“गद्य सागर”

पाठ्य-पुस्तक

बी.बी.ए/ बी.एच.एम/ एम.टी.ए/ बी.बी.ए (एवीएशन)
ए.ई.सी.सी भाषा तहत)
(B.B.A./B.H.M/M.T.A/ B.B.A (Aviation)
Language under AECC)

प्रथम सेमिस्टर ~ FIRST SEMESTER
एस.ई.पी पाठ्यक्रम ~ SEP SYLLABUS
(2024-25 Onwards)

संपादक
डॉ. शैलजा
डॉ. शर्मिला बिश्वास

प्रकाशक
प्रसारांग
बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरू - 560001

GADYA SAGAR:

Edited by:
Dr. Shylaja
Dr. Sharmila Biswas

@बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय
प्रथम संस्करण – 2024

Pages: 85

प्रधान संपादक

डॉ. शेखर

मूल्य :-

प्रकाशक
प्रसारांग
बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरू – 560001

भूमिका

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय में 2024-25 शैक्षिक वर्ष से एस.ई.पी-2024 नियम (पद्धति) के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए नया पाठ्यक्रम जारी किया जा रहा हैं।

इस पाठ्यक्रम की संरचना ऐसी की गई है कि इसके अध्ययन के पश्चात् हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी यह जान सके कि साहित्य का विश्लेषण कैसे किया जाए और उसकी सराहना कैसी की जाए और दिये गये पाठ को पढ़ने की समझ किस प्रकार विकसित की जाए, ताकि विद्यार्थी भाषा और साहित्य के उद्देश्य से भली-भाँति परिचित हो सके। जैसे विज्ञान और आदि विषयों के अध्ययन के साथ यह भी अधिक उपयोगी हैं। विश्वविद्यालय की यह शुभेच्छा है कि साहित्य और समाज शास्त्रीय विषयों के लिए भी अधिक उपयोगी और प्रासंगिक लगे। एस.ई.पी सेमिस्टर (सीबीसीएस) पद्धति के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण किया गया हैं।

इस पृष्ठभूमि में हिन्दी अध्ययन-मण्डल ने विभागाध्यक्ष डॉ. शेखर के मार्गदर्शन में पाठ्य-पुस्तक का निर्माण किया है।

विश्वास है कि यह कथा संकलन छात्र समुदाय के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देनेवाले सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभारी है।

डॉ. लिंगराज गांधी
कुलपति
बेंगलूर नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरू–01

प्रधान संपादक की कलम से......

बेंगलूरू नगर विश्वविध्यालय शैक्षिक क्षेत्र में नये-नये विषयों को अपने अध्ययन की सीमा में ले रहा है। अध्ययन को राज्य शिक्षा नीति - 2024 के अनुसार प्रस्तुति करने का प्रयत्न हो रहा है। साहित्यिक विषयों को आज की बदलती परिस्थिति के अनुसार रखने के उद्देश्य से पाठ्यक्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

एस.ई.पी सेमिस्टर पध्दति के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा रहा है। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सम्पादकों के प्रति मैं आभारी हूँ।

इस नयी पाठ्य पुस्तक के निर्माण में कुलपति महोदय डॉ. लिंगराज गांधी जी ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया, तदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

इस पाठ्यक्रम को राज्य शिक्षा नीति के ध्येयोद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया गया है। गद्य के विविध आयामों को इस पाठ्य पुस्तक में शामिल किए गए। आशा है कि सभी विद्यार्थीगण इससे अवश्य लाभान्वित होंगे।

डॉ. शेखर
अध्यक्ष, (बी.ओ.एस)
बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय,
बेंगलूरू–01

अनुक्रमणिका

क्रमांक	पाठ का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	भारत एक है। – (निबंध)	: रामधारी सिंह 'दिनकर'	05-14
2.	रंगप्पा की शादी – (कन्नड़ कहानी)	: मास्ति वेंकटेश अय्यंगार 'श्रीनिवास'	15-25
3.	रजिया – (रेखचित्र)	: रामवृक्ष बेनीपुरी	26-36
4.	वह चीनी भाई – (संस्मरण)	: महादेवी वर्मा	37-48
5.	सदाचार का तावीज़ – (व्यंग्य)	: हरिशंकर परसाई	49-55
6.	बीमार का इलाज – (एकांकी)	: उदय शंकर भट्ट	56-67
7.	हिन्दुस्तान को सलाम: डॉ. बर्नर- (चर्चित यात्रा-कथा)	: कमलेश्वर	68-76
8.	नादान दोस्त - कहानी	: प्रेमचंद	77-83
9.	अनुवाद	वाणिज्यिक शब्दावली	84-85

1. भारत एक है।

- रामधारी सिंह 'दिनकर'

लेखक परिचय:~

राष्ट्रीय प्रगतिशील कवि रामधारी सिंह दिनकर का जन्म बिहार के मुंगेर जिले के सिमरिया नामक ग्राम में सन 1908 ईस्वी में एक किसान परिवार में हुआ। उनके प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। उन्होंने पाटना विश्वविद्यालय से बीए ऑनर्स की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर, कुछ समय तक वह स्कूल के प्रधान अध्यापक के रूप में, कुछ समय तक सब-रजिस्टार के रूप में तथा कुछ समय तक बिहार सरकार के प्रचार विभाग में उपनिदेशक के रूप में कार्य करते रहे। सन् 1952 में विराजित सभा के मनोनीत सदस्य तथा 1956 में राष्ट्रभाषा आयोग के सदस्य नियुक्त हुए। उन्हें पद्मभूषण की उपाधि से विभूषित भी किया गया।

दिनकर जी हिंदी के साथ-साथ बांग्ला, संस्कृति तथा उर्दू के अच्छे विद्वान थे। राष्ट्रकवि के रूप में उनके विशिष्ट महत्व है हिंदी में उनकी काव्य रचनाओं तथा उनके गद्य साहित्य का बहुमूल्य योगदान है। काव्य जगत में रेणुका, रसवंती, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, उर्वशी आदि उनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। आलोचना तथा निबंध साहित्य में अर्धनारीश्वर, वेद के फूल, हमारी संस्कृति, एकता, मैथिली, सेनगुप्ता, काव्य की भूमिका आदि प्रसिद्ध है। उनकी भाषा विशुद्ध हिंदी और निबंध शैली विचारात्मक है। इसके साथ-साथ काव्यात्मक, वर्णनात्मक, विचारात्मक शैलियों भी उनके गद्य में प्रयुक्त हुई है। उनका निधन सन 1974 ई. में हुआ।

~ Ω ~ Ω ~

अक्सर कहा जाता है कि भारतवर्ष की एकता उसकी विविधताओं में छिपी हुई है, और यह बात जरा भी गलत नहीं है, क्योंकि अपने देश की एकता जितनी प्रकट है, उसकी विविधताएँ भी उतनी ही प्रत्यक्ष हैं।

भारतवर्ष के नक्शे को ध्यान से देखने पर यह साफ दिखाई पड़ता है कि इस देश के तीन भाग प्राकृतिक दृष्टि से बिल्कुल स्पष्ट हैं। सबसे पहले तो भारत का उत्तरी भाग है, जो लगभग हिमालय के दक्षिण से लेकर विंध्याचल के उत्तर तक फैला हुआ है। उसके बाद विंध्य से लेकर कृष्णा नदी के उत्तर तक फैला हुआ है। जिसे हम दक्षिणी प्लेटो कहते हैं। इस प्लेटों के दक्षिण, कृष्णा नदी से लेकर कुमारी अंतरीप तक का जो भाग है, वह पर्यायद्वीप जैसा है। अचरज की बात है कि प्रकृति ने भारत के जो ये तीन खंड किए हैं, वे ही खंड भारतवर्ष के इतिहास के भी तीन क्रीडास्थल रहे हैं। पुराने समय में उत्तर भारत में जो राज्य कायम किए गए, उनमें से अधिकांश विंध्य की उत्तरी सीमा तक ही फैलकर रह गये। विंध्य को लाँघकर उत्तर भारत को दक्षिण भारत से मिलाने की कोशिश तो बहुत की गई, मगर इस काम में कामयाबी किसी-किसी को ही मिली। कहते हैं, पहले-पहल अगस्त्य ऋषि ने विंध्याचल को पार करके दक्षिण के लोगों को अपना संदेश सुनाया था। फिर भगवान श्री रामचंद्र ने लंका पर चढ़ाई करने के सिलसिले में विंध्याचल को पार किया।

महाभारत के जमाने में उत्तर और दक्षिणी भारत के अंश एक राज्य के अधीन थे या नहीं, इसका कोई पक्का सबूत नहीं मिलता, लेकिन, रामचंद्र जी ने उत्तरी और दक्षिणी भारत के बीच जो एकता स्थापित की, वह महाभारत काल में भी कायम थी और दोनों भागों के लोग आपस में मिलते-जुलते रहते थे। महाराज युधिष्ठिर के राजसूय-यज्ञ में दक्षिण के राजाओ भी आए थे और कुरुक्षेत्र के मैदान में जो महायुद्ध हुआ था, उसमें भी दक्षिण के वीरों ने हिस्सा लिया था। इसका प्रमाण महाभारत में ही मौजूद है। इसी तरह चंद्रगुप्त, अशोक, विक्रमादित्य और उसके बाद मुगलों ने भी इस बात के लिए बड़ी कोशिश की कि किसी तरह सारा देश

एक शासन के अधीन लाया जा सके, और उन्हें इस कार्य में सफलता भी मिली।

लेकिन भारत के इतिहास की एक शिक्षा यह भी है कि देश को एक रखने के काम में यहाँ के राजाओं को जो भी सफलता मिली, वह ज्यादा टिकाऊ नहीं हो सकी। इस देश के प्राकृतिक ढाँचे में ही कोई ऐसी बात थी, जो सारे देश को एक रहने देने के खिलाफ पड़ती थी। यही कारण था कि जब कोई भी बलवान और दूरदर्शी राजा इस काम में लगा, सफलता थोड़ी बहुत उसे जरूर मिली, लेकिन स्वार्थी, अदूरदर्शी और कमजोर राजाओं के आते ही देश की एकता टूट गई। और जो कठिनाई बिन्ध्य के उत्तर को विन्ध्य के दक्षिण में हुई, वही कठिनाई कृष्णा नदी से उत्तर के भाग को उसके दक्षिण के भाग से मिलाकर एक रखने में होती रही।

इस देश में वैर-फूट का भाव इतना प्रबल क्यों रहा, इसके भी कारण हैं। बड़ी-बड़ी नदियों और बड़े-बड़े पहाड़ों के गुण अनेक हैं। लेकिन उनमें एक अवगुण भी होता है कि वे जहाँ रहते हैं, वहाँ देश के भीतर अलग-अलग क्षेत्र बना देते हैं और इन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के भीतर एक तरह की प्रांतीयता या क्षेत्रीय जोश पैदा हो जाता है। यह देश है बहुत विशाल। इसके उत्तरी छोर पर कश्मीर पड़ता है, जिसकी जलवायु लगभग मध्य एशिया की जलवायु के समान है। इसके विपरीत भारत के दक्षिण छोर पर कुमारी अंतरीप है, जहाँ के घरों की रचना और लोगों के रंग-रूप आदि में श्रीलंका या सिलोन का नमूना शुरू हो जाता है। चेरापूँजी भी इसी देश में है, जहाँ साल में पाँच सौ इंच से अधिक वर्षा होती है, और थार की मरुभूमि भी यहीं है, जहाँ वर्षा होती ही नहीं, अथवा नाममात्र को होती है।

धरती की रूपरेखा और जलवायु का प्रभाव उस पर बसनेवाले लोगों के शरीर और मस्तिष्क, दोनों पर पड़ता है। पहाड़ और रेगिस्तान की जिन्दगी जरा मुश्किल होती है। यही

कारण है कि उनमें बसनेवाले लोग आजाद तबीयत के होते हैं, क्योंकि प्रकृति की कठिनाइयों को झेलते-झेलते उनका शरीर कड़ा और मन साहसी एवं निर्भीक हो जाता है। भारतीय इतिहास में राजपूतों और मराठों की वीरता जो इतनी प्रसिद्ध हुई उसका एक कारण यह भी है कि बचपन से ही मराठों को पहाड़ी तथा राजपूतों को पहाड़ी और रेगिस्तानी, दोनों ही प्रकार के जीवन से संघर्ष करने का मौका हासिल था। इसके विपरीत, नदियों के पठारों में रहनेवाले लोग किसान-तबीयत के हो जाते हैं। क्योंकि पठार की जमीन उपजाऊ होती है और वहाँ रहनेवालो को जीने के लिए ज्यादा मेहनत करने की जरूरत नहीं होती। यही कारण है कि बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश के किसान वैसे तगड़े नहीं होते जैसे राजस्थान के राजपूत या उत्तर-पश्चिमी भारत के औसत सिक्ख और पठान लोग होते हैं।

जलवायु एवं क्षेत्रीय सुविधा के अनुसार ही लोगों के पहनावे-ओढ़ावे और खानपान में भी भेद हो जाता है। जो भेद भारत में बहुत ही प्रत्यक्ष है। असल में, इन भेदों को मिटाकर अगर हम कोई एक राष्ट्रीय ढंग चलाना चाहे तो उससे अनेक लोगों को बहुत ज्यादा तकलीफ हो जाएगी। उदाहरण के लिए अगर हम रोटी और उड़द की दाल अथवा रोटी और मांस को देश का राष्ट्रीय भोजन बना दें, तो पंजाबी लोग तो मजे मे रहेंगे लेकिन बिहारी और बंगाल के लोगों का हाल बुरा हो जाएगा। इसी तरह, अगर हम यह कानून बना दें कि हर हिंदुस्तानी को चप्पल पहनना ही होगा तो काश्मीर के लोग घबरा उठेंगे, क्योंकि पहाड़ पर चलनेवालों के पाँवों में चप्पल ठीक-ठाक नहीं चल सकते। पहनावे-ओढ़ावे में भी जगह-जगह भिन्नता मिलाती है और पोशाकें भी जलवायु एवं क्षेत्रीय की सुविधा के अनुसार ही यहाँ तरह-तरह की फैली हुई है।

मगर, विविधता का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि हमारे देश में अनेक प्रकार की भाषाएँ फैली हुई हैं और इनके कारण हम आपस में भी अजनबी के समान हो जाते हैं। उत्तर भारत में तो गुजरात से लेकर बंगाल तक की जनता के बीच संपर्क खूब हुआ है, इसलिए वहाँ भाषा-भेद की कठिनाई उतनी नहीं अखरती। लेकिन, अगर कोई उत्तर-भारतवासी दक्षिण चला जाए अथवा कोई दक्षिण-भारतीय उत्तर चला जाए और वह अपनी मातृभाषा के सिवा अन्य की भाषा नहीं जानता हो तो वह, सचमुच बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा। भाषा-भेद की यह समस्या हमारी राष्ट्रीय एकता की सबसे बड़ी बाधा है। राष्ट्रीय एकता में पहले यह बाधा थी कि पहाड़ों और नदियों को लाँघना आसान नहीं था। मगर, अब विज्ञान के अनेक सुगम साधनों के उपलब्ध हो जाने से वह बाधा दूर हो गई है। आज अगर देश के एक कोने में अकाल पड़ता है तो दूसरे कोने से अनाज यहाँ तुरंत पहुँचा दिया जाता है।

इसी प्रकार पहले जब देश के एक कोने में विद्रोह होता था, तब दूसरे कोने में पड़ा हुआ राजा जल्दी से फौज भेजकर उसे दबा नहीं सकता था और विद्रोह की सफलता से देश की एकता टूट जाती थी। लेकिन आज तो देश के चाहे जिस कोने में भी विद्रोह हो, हम दिल्ली से फौज भेज उसे तुरंत दबा सकते हैं। प्राकृतिक बाधाएँ खत्म हो गई हैं यही कारण है कि आज हमारी एकता इतनी विशाल हो गई है जितनी विशाल रामायण, मौर्य और मुगल जमानों में भी कभी नहीं हुई थी। अब भी जो क्षेत्रीय जोश या प्रान्तीय मोह बाकी है, वह धीरे-धीरे कम हो जाएगा, क्योंकि इस जोश को पालनेवाली प्राकृतिक बाधाएँ अब शेष नहीं है। मगर, भाषा-भेद की समस्या जरा कठिन है और उसका हल तभी निकलेगा जब हिंदी-भाषा का अच्छा प्रचार हो जाए। सौभाग्य की बात है कि इस दिशा में काम शुरू हो गए हैं और कुछ समय बीतते-बीतते हम इस बाधा पर भी विजय प्राप्त कर लेंगे।

यह तो हुई भारत की विविधता की कहानी। अब जरा यह देखने की कोशिश करनी चाहिए कि इस विविधता के भीतर हमारी एकता कहाँ छिपी हुई है। सबसे विचित्र बात तो यह है कि यद्यपि हम अनेक भाषाएँ बोलते हैं (जिनमें चौदह भाषाएँ तो ऐसी हैं, जिन्हें भारत सरकार ने स्वीकृति दे रखी है। ये भाषाएँ है- हिंदी, उर्दू, बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़, उड़िया, पंजाबी, कश्मीरी और संस्कृत), किंतु भिन्न-भिन्न भाषाओं के भीतर बहने वाली हमारी भावनधारा एक है, तथा हम प्राय: एक ही तरह के विचारों और कथा-वस्तुओं को लेकर अपनी-अपनी बोली में साहित्य रचना करते हैं।

रामायण और महाभारत को लेकर भारत की प्राय: सभी भाषाओं के बीच अद्‌भुत एकता मिलेगी, इसके सिवा, संस्कृत और प्राकृत में भारत का जो साहित्य लिखा गया था, उसका प्रभाव भी सभी भाषाओं की जड़ में काम कर रहा है। विचारों की एकता जाति की सबसे बड़ी एकता होती है। अतएव भारतीय जनता की एकता के असली आधार भारतीय दर्शन और साहित्य हैं, जो अनेक भाषाओं में लिखे जाने पर भी, अंत में जाकर एक ही साबित होते हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि फारसी लिपि को छोड़ दें तो भारत की अन्य सभी लिपियों की वर्णमाला एक ही है, यद्यपि वह अलग-अलग लिपियों में लिखी जाती हैं। जैसे हम हिंदी में क,ख,ग आदि अक्षर पढ़ते हैं, वैसे ही ये अक्षर भारत की अन्य लिपियों में भी पढ़े जाते हैं, यद्यपि उनके लिखने का ढंग और है।

हमारी एकता का दूसरा प्रमाण यह है कि उत्तर या दक्षिण चाहे जहाँ भी जाएँ, आपको जगह-जगह पर एक ही संस्कृति के मन्दिर दिखाई देंगे, एक तरह के आदमियों से मुलाकात होगी, जो चंदन लगाते हैं, पूजा करते हैं, तीर्थ-व्रत में विश्वास करते हैं और जो नई रोशनी को अपना लेने के कारण इन बातों को कुछ शंका की दृष्टि से देखते हैं। उत्तर भारत के लोगों का जो स्वभाव है, जीवन

को देखने की जो उनकी दृष्टि है, वही स्वभाव और वहीं दृष्टि दक्षिण वालों की भी है। भाषा की दीवार के टूटते ही, उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय के बीच कोई भी भेद नहीं रह जाता और वे आपस में एक दूसरे के बहुत करीब आ जाते हैं।

असल में, भाषा की दीवार के आर-पार बैठे हुए भी वे एक ही हैं। वे धर्म के अनुयायी और संस्कृति की एक विरासत के भागीदार हैं। उन्होंने देश की आजादी के लिए एक होकर लड़ाई लड़ी और आज उसकी पार्लियामेंट और शासन-विधान भी एक हैं। और जो बात हिंदुओं के बारे में कही जा रही है, वही बहुत दूर तक मुसलमानों के बारे में भी कही जा सकती है। देश के सभी कोनों में बसनेवाले मुसलमानों के भीतर जहाँ एक धर्म को लेकर एक तरह की आपसी एकता है, वहाँ वे संस्कृति की दृष्टि से हिंदुओं के भी बहुत करीब हैं, क्योंकि ज्यादा मुसलमान तो ऐसे ही हैं जिनके पूर्वज हिंदू थे और जो इस्लाम धर्म में जाने के समय अपनी हिंदू आदतें अपने साथ ले गये। इसके सिवा अनेक सदियों तक हिंदू-मुसलमान साथ रहते आए हैं। और इस लंबी संगति के फलस्वरूप उनके बीच संस्कृति और तहजीब की बहुत-सी समान बातें पैदा हो गई हैं, जो उन्हें दिनोंदिन आपस में नज़दीक लाती जा रही हैं।

धार्मिक विश्वास की एकता मनुष्यों की सांस्कृतिक एकता को जरूर पुष्ट करती है। इस दृष्टि से, एक तरह की एकता तो वह है जो हिन्दू-समाज में मिलेगी, जो मुस्लिम समाज में मिलेगी, जो पारसी या क्रिस्तानी समाज में मिलेगी। लेकिन, धर्म के केन्द्र से बाहर जो संस्कृति की विशाल परिधि है, उसके भीतर बसनेवाले सभी भारतीयो के बीच एक तरह की सांस्कृतिक एकता भी है जो उन्हें दूसरे देशों के लोगों से अलग करती है। संसार के हर एक देश पर अगर हम अलग-अलग विचार करें तो हमें पता चलेगा कि प्रत्येक देश की एक निजी सांस्कृतिक विशेषता होती है जो उस

देश के प्रत्येक निवासी की चाल-ढाल, बातचीत, रहन-सहन, खान-पान, तौर-तरीके और आदतों से टपकती रहती है। चीन से आनेवाला आदमी विलायत से आनेवालों के बीच नहीं छिप सकता, और यद्यपि अफरीका के लोग भी काले ही होते हैं, मगर, वे भारतवासियों के बीच नहीं खप सकते।

भारतवर्ष में भी यूरोपीय पोशाकें खूब चली हुई हैं, लेकिन, यूरोपीय लिबास में सजे हुए सौ हिन्दुस्तानियों के बीच एक अँगरेज को खड़ा कर दीजिए, वह आसानी से अलग पहचान लिया जायगा। इसी तरह, भारत के हिन्दू ही नहीं, बल्कि, हिन्दुस्तानी क्रिस्तान, पारसी और मुसलमान भी भारत से बाहर जाने पर आसानी से पहचान लिये जाते हैं कि वे हिन्दुस्तानी हैं। और यह बात कुछ आज पैदा नहीं हुई है, बल्कि इतिहास के किसी भी काल में भारतवासी भारतवासी ही थे तथा अन्य देशों के लोगों के बीच वे खप नहीं सकते थे। यही वह सांस्कृतिक एकता या शक्ति है जो भारत को एक रखे हुए है। यही वह विशेषता है जो उन लोगों में पैदा होती है जो एक देश में रहते हैं, एक तरह की जिन्दगी बसर करते है और एक तरह के दर्शन और एक तरह की आदतों का विकास करके एक राष्ट्र के सदस्य हो जाते हैं।

ऊपर एक जगह हमने भूगोल को दोष दिया है कि उसने पहाड़ों और नदियों के द्वारा इस देश को भीतर से बाँट रखा है, जिससे इस देश में क्षेत्रीय जोश और प्रान्तीय भावनाओं के विकास के लिए मौका निकल आया है। मगर, हम भूगोल का उपकार भी नहीं भूल सकते। भारत के भीतर, यद्यपि, प्रान्तीय भेदों को लिये हुए अनेक क्षेत्र मौजूद हैं, लेकिन, इन तमाम भिन्नताओं को समेटकर भारत को एक पूर्ण देश बनाने का काम भी हमारे भूगोल ने ही किया है। पहाड़ों और समुद्रों से घिरे हुए इस विशाल देश में जो मौलिक एकता का भाव है, वह हमारे भूगोल की देन है। भीतर से कुछ-कुछ बँटा हुआ और बाहर से बिलकुल एक, भारत की यह

विशेषता बहुत पुरानी है।

यह ठीक है कि प्रान्तीयता के जोश में आकर कोई-कोई क्षेत्र राष्ट्र की एकता से अलग होकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम करने के लिए जब-तब कोशिश करते रहे हैं, मगर, यह भी ठीक है कि सारे देश को एकच्छत्र शासन (चक्रवर्ती-राज्य) के अन्दर लाने का सपना भी यहाँ बराबर मौजूद रहा है। देश की इस मौलिक एकता के भाव ने प्रान्तीयता के सामने कभी भी हार नहीं मानी। भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी शिक्षा यह है कि इस देश में राष्ट्रीयता और प्रान्तीयता के बीच बराबर संघर्ष चलता रहा है। कभी तो ऐसा हुआ कि किसी बलवान राजा के अन्दर देश एक हो गया और कभी ऐसा हुआ कि इस एकता में कही पर प्रान्तीयता ने छेद कर दिया और फिर उस छेद को भरने की कोशिश की जाने लगी।

प्राचीन भारत में चक्रवर्ती सम्राट् कहलाने के लिए यहाँ के राजे अक्सर, बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ा करते थे। मगर, इन लड़ाइयों के भीतर सिर्फ यही भाव नहीं था कि राजे अपना प्रभुत्व फैलाना चाहते थे। कुछ यह बात भी थी कि इस देश की भौगोलिक परिस्थिति ही सारे देश को एक देखना चाहती थी और भौगोलिक परिस्थिति की इसी प्रेरणा से देश के सभी बड़े राजे इस बात के लिए उद्योग खड़ा कर देते थे कि सारा देश उनके अन्दर एक हो जाय।

भूगोल ने भारत की जो चौहद्दी बाँध दी है। उसके साथ दस्तंदाजी करने की कोशिश कभी भी कामयाब नहीं हुई। सीमा के बाहर की दुनिया से भारत को अलग रखकर उसे भीतरी एकता के सूत्र में बाँधने की प्रेरणा यहाँ के भूगोल की सबसे बड़ी शिक्षा रही है। और इसी प्रेरणा के कारण वे लोग बराबर असफल रहे जो देश के भीतर के किसी भाग को, प्रान्तीयता के जोश में आकर, स्वतंत्र राज्य का रूप देना चाहते थे। भारत का कोई भी

भाग समूचे भारत से अलग जाकर स्वतंत्र होने की चेष्टा करे, यह अस्वाभाविक बात है। इसी तरह, यह भी अस्वाभाविक है कि हम दुनिया के किसी ऐसे हिस्से को भारत के साथ बाँध रखने की कोशिश करें जो भारत की चौहद्दी से बाहर पड़ता है और जिसे भारत का भूगोल अपने भीतर पचा नहीं सकता। दुनिया के हिस्से को काटकर उसे भारत के साथ मिला रखने का काम उतना ही अप्राकृतिक साबित हुआ है जितना कि हिन्दुस्तान के किसी अंग को काटकर उसे अलग जिंदा रखने की कोशिश।

मौर्यों ने एक समय (अफगानिस्तान) कन्धार को भारत मे मिला लिया था। लेकिन, कन्धार भारत में रखा नही जा सका। यूनानियों ने पंजाब को काटकर कन्धार में मिला लिया था; मगर, उनकी भी कोशिश बेकार हुई और पंजाब भारत में वापस आ गया। महमूद गजनी ने काबुल में बैठकर भारत पर राज्य करना चाहा, लेकिन, इस अस्वाभाविक कार्य में उसे सफलता नही मिली। पठान बादशाहों ने दिल्ली मे बैठकर पश्चिमोत्तर सीमा के पार की जमीन पर हुकूमत करनी चाहीए, मगर, वे भो नाकामयाब रहे। सिन्ध पर जब मुसलमानो ने पहले पहल कब्जा किया, तब वे भी चाहते थे कि सिन्ध ईरान का अंग रहे और वे ईरान से ही उसपर हुकूमत चलायें, लेकिन, यह भारत के भूगोल के खिलाफ बात थी, इसलिए, उनकी कोशिश भी बेकार हुई। असली बात यह है कि जैसे दुनिया के और भी कई देश दुनिया से अलग और अपने-आपमे पूर्ण हैं, वैसे ही, प्रकृति ने भारतवर्ष को भी. एक स्वतंत्र देश के रूप में सिरजा है, जो दुनिया से अलग और अपने-आपमे पूर्ण है तथा जिसके भीतर बसनेवाले सब लोग भारतीय हैं।
('रेती के फूल' पुस्तक से)

~ Ω ~ Ω ~

2. रंगप्पा की शादी

~: मास्ति वेंकटेश अय्यंगार 'श्रीनिवास'

लेखक परिचय:~

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार 'कन्नड़ कहानी के प्रवर्तक' और ‘कन्नड़ की संपत्ति’ के रूप में ख्याति प्राप्त कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, नाटककार, अनुवादक और आलोचक थे। इनके लगभग 15 कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'नवरात्रि' एवं 'श्रीराम पट्टाभिषेक' उनके दो महत्त्वपूर्ण काव्य हैं।

कर्नाटक के कोलार ज़िले के मालूर तालूका के 'मास्ति' नामक गाँव में वेंकटेश अय्यंगार का जन्म हुआ। मास्ति में जन्म लेने के कारण मास्ति नामक रखा वेंकटेश के नाम से जुड गया। 1914 में मास्ति ने मद्रास विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा पास की। उसके बाद मैसूर राज्य की 'सिविल सर्विस परीक्षा' में उत्तीर्ण होकर असिस्टेंट कमिशनर बनें। और 1930 में जिलाधिकारी भी बनें। मास्ति "आधुनिक कन्नड़ कहानी के जनक" के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपनी प्रारंभिक कहानियाँ 1910-1911 में लिखीं। उनके लगभग 15 कहानी संग्रह प्रकाशित हुए।

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार का रचना संसार समृद्ध है। बिन्नह, अरुण तावरे, चेलुवु, गौडरमल्ली, नवरात्रि आदि इसके कविता संग्रह हैं। 'श्रीराम पट्टाभिषेक' इनका महाकाव्य है। इनकी लिखी सैकड़ों कहानियाँ 10 भागों में प्रकाशित हैं। ‘चेन्नबसव नायक’ और ‘चिक्कावीर राजेन्द्र’ - मास्ति के दो बृहत उपन्यास हैं। काकनकोटे, ताळीकोटे, यशोधरा आदि नाटक हैं। मेयर महाराजा, चंडमारूत, द्वादषा रात्री, हैमलेट आदि इनके कन्नड अनुवाद नाटक हैं। मास्तिजी की आत्मकथा ‘भाव’ तीन भागों में प्रकाशित है। मास्ति ‘जीवन’ पत्रिका चलाते थे। 1944 से 1965 तक वे उसके संपादक भी रहें।

~@~@~

यह शीर्षक पढ़कर आप में से कोई यह पूछ सकते हैं कि क्यों भाई, 'रंगनाथ का विवाह' अथवा 'रंगनाथ की विजय' नहीं रखा और यह क्या नाम रख दिया? जी हाँ, जगन्नाथ की विजय', 'गिरिजा कल्याण' की भाँति 'श्री रंगनाथ की विजय' जैसा एक भारी भरकम सा नाम रखा जा सकता था। यह बात नहीं, कि यह मेरे ध्यान में नहीं आया हो, पर देखिए यह जगन्नाथ की विजय भी नहीं है और गिरिजा कल्याण भी नहीं है, यह तो हमारे गाँव के साधारण आदमी रंगा की शादी हैं; इसलिए ऐसा नाम रखा है।

हमारा गाँव होसहल्ली है। उसका नाम आप लोगों ने नहीं सुना होगा? ओह बेचारे! यह आप का दोष नहीं। भूगोल की पुस्तक में उसका नाम ही नहीं है। इंग्लैंड में रहनेवाले या अँग्रेज़ी में भूगोल लिखनेवाले साहब को होसहल्ली का पता कैसे होगा? इसलिए उन लोगों ने छोड़ दिया होगा। लेकिन असल में बात यह है कि जब हमारे लोग भूगोल लिखेंगे, वे भी होसहल्ली भूल जायेंगे। खैर, यह तो भेड़ चाल है। सब एक के पीछे एक आँख खोलकर ही गिरते हैं। इंग्लैंड के साहब और हमारे ग्रंथकार यदि शहर को भूल जायें तो बेचारा नक्शा बनानेवाला, शहर को क्या याद रखेगा? नक्शे में तो उसका नामो-निशान भी नहीं हैं।

अरे! मैंने क्या शुरू किया और क्या कहने लग गया। क्षमा कीजिए। भारत में मैसूर की दावत में गुझिया (आज के समोसे) की भाँति है। मैसूर में होसहल्ली गुझिया में भरे मसाले की भाँति है। ये दोनों बातें निःसंदेह सत्य हैं। आप सैकड़ों बातें कर सकते हैं, मैं मना नहीं करता। पर यह बात तो सच है कि होसहल्ली का मैं अकेला ही प्रशंसक नहीं। हमारे गाँव में एक वैद्य हैं। उनका नाम गुंडा भट्ट है। उनका भी यही कहना है। उन्होंने ज़रा दुनिया देखी है। इसका मतलब यह नहीं कि वे विलायत हो आये हैं। आजकल के लड़के अगर यह पूछते हैं कि ''आपने विलायत देखा है?'' तो वे कहते हैं, 'नहीं भइया! वह तो मैंने तुम्हारे लिए छोड़ रखा है। वह

एक जगह न रहकर सारी दुनिया में पागल कुत्ते की तरह चक्कर काटने के बराबर है, तुम्हें ही मुबारक। हाँ, मैं थोड़ा बहुत अपने देश में घूम आया हूँ।' उन्होंने भी बहुत से गाँव देखे हैं।

हमारे गाँव के सामने ही एक अमराई है। एक दिन कृपा कर हमारे गाँव पधारिए। एक अमिया(आम) दूँगा, खा कर देखिए। अरे बाबा, खाने की ज़रूरत नहीं, तनिक चखकर देखिए। उसकी खट्टास गाल तक चढ़ जायेगी। एक बार मैं वह अमिया ले आया। घर में उसकी चटनी बनी। सब लोगों ने खा ली। तब उन्होंने यह बात कहा - अरे भई ! सभी को खाँसी का शिकार हो जाना चाहिए क्या? दवा के लिए वैद्य के पास जाना पड़ेगा।

यह अमिया जितनी बढ़िया है उतनी ही हमारे गाँव की और उसके पास की हर चीज़ बढ़िया है। हमारे गाँव की बावड़ी के पानी के स्वाद के क्या कहने! उस बावड़ी में कमल की बेल है। देखने में फूल बड़े सुन्दर हैं। खाने को पत्तल न मिल पाये तो दोपहर में स्नान करने के बाद दो पत्ते तोड़कर ले आने से काम चल जाता है। इससे पत्तल बनाने का झंझट ही नहीं। आप सोचेंगे कि मैं कहाँ-कहाँ की बातें ले बैठा। क्या करूँ ! गाँव की बात उठते ही ऐसा होता है। ख़ैर जाने दीजिए। अब उस प्रसंग को यहीं बंद करता हूँ। अगर आपमें से किसी को हमारे गाँव आने की इच्छा हो तो मुझे एक पत्र लिख दीजिए। होसहल्ली कहाँ है, कैसे पहुँचना है, यह सब बता दूँगा। बाद में आप आसानी से आ सकते हैं। जो भी हो सुनने से अच्छा देखना ही श्रेष्ठ होता है न?

मैं अब से कोई दस साल की पुरानी बात कह रहा हूँ। तब हमारे गाँव में अँग्रेज़ी पढे लिखे लोगों की संख्या उंगली पर गिनी जा सकती थी। करणीक महोदय ने ही पहली बार हिम्मत करके अपने बेटे को बंगलौर में अँग्रेज़ी पढ़ने के लिए भेजा था। अब क्या है, अब तो ऐसे बहुत हैं। छुट्टियों के दिनों में तो गली-गली में अँग्रेज़ी में गिटपिट करनेवाले लोग मिल जाते हैं। पहले तो कहीं भी

कोई गिटपिट करनेवाला नहीं मिलता था। लोग कन्नड़ बोलते समय भी अँग्रेज़ी के शब्द नहीं मिलाते थे। वह हास्यास्पद हो जाता था। आजकल तो ऐसा ही है। चार दिन पहले, रामराय के घरवालों ने एक लकड़ी का गट्ठा लिया। उनका लड़का पैसे देने आया। उसने लकड़ीवाली से पूछा, ''कितने पैसे हुए ?'' उस पर वह बोली, ''चार आने दीजिए।'' तब रामराय का बेटे ने - 'चेंज नहीं है कल ले जाना,' कहकर भीतर चला गया। उस बेचारी को उसकी बात ही समझ में नहीं आयी। वह भुनभुनाती चली गयी। उस समय मैं वही खडा था, बात मेरी समझ में भी नहीं आयी। बाद में रंगा के घर जाकर रंगा से पूछा। उसने 'चेंज' माने चिल्लर बताया।

इस प्रकार की अमूल्य अँग्रेज़ी भाषा उन दिनों हमारे गाँव में प्रचलित नहीं थी। इसलिए रंगा के बंगलौर से गाँव लौटने पर सारे गाँववाले— ''अरे रंगा आया है। चलो, देखने चलो। करणीक का लड़का गाँव आया है। अरे बंगलौर से पढ़ लिखकर आया है।'' कहकर सब उसके दरवाजे पर जमा हो गये। लोगों की भीड़ का क्या कहूँ! मैं भी उनके आँगन में जाकर खड़ा हो गया। लोगों की भीड़ देखकर मैंने पूछा, ''ये सब यहाँ क्यों आये हैं। क्या यहाँ कोई बन्दर का नाच हो रहा है?'' वहाँ एक लड़का था जिसे ज़रा भी अक्ल नहीं थी। ''तुम क्यों आये हो?'' कहकर उसने उन लोगों के सामने मुझसे पूछ ही डाला। वह एकदम छोकरा था। मान-मर्यादा की गंध तक न जानता था। मैं यह सोचकर चुप हो गया कि वह पुराने जमाने के रीति-रिवाजों से एकदम अनभिज्ञ है।

इतने लोगों को देखते ही रंगा बाहर आया। यदि हम सब कमरे में घुस जाते तो कलकत्ता की काल कोठरी में जो हुआ था वह यहाँ भी हो जाता। भगवान् की कृपा से ऐसा होने से बच गया। रंगा के बाहर आते ही सबको अचरच हुआ। छः मास पूर्व हमारे गाँव से जाते समय वह जैसा था उस दिन भी वैसा ही था। एक बुढ़िया उसके पास ही आ खड़ी हुई थी। उसने उसकी छाती पर

हाथ फेरकर ध्यान से देखा। ''जनेउ अब भी है। जाति भिरस्ट नहीं हुआ,'' कहकर चली गयी। रंगा हँस पड़ा।

रंगा के पास पहले की तरह ही हाथ, पैर, आँख, नाक थे। यह देखकर वहाँ से लोगों की भीड़ ऐसे विलीन हो गयी जैसे बच्चे के मुँह में मिश्री घुल जाती है। मैं खड़ा ही रहा। सबके चले जाने के बाद मैंने पूछा, ''कहो भाई रंगप्पा, कैसे हो ?'' तब रंगा का ध्यान मेरी ओर गया। पास आकर नमस्कार करके बोला, ''आपके आर्शीवाद से सब ठीक है।''

रंगा में और एक बड़ा गुण है। वह जानता है कि किससे बात करने से क्या लाभ होता है। लोगों की कीमत वह अच्छी तरह जानता है। नमस्कार भी उसने आजकल के लड़कों की भाँति मुँह आसमान की ओर करके, अकड़कर यों ही हाथ जोड़कर नहीं किया। बल्कि ज़मीन पर झुककर, मेरे पाँव छूकर, नमस्कार किया। मैं ''शीघ्रमेव विवाहमस्तु'' कहकर आर्शीवाद देकर घर चला आया।

दोपहर को जब मैं भोजन करके लेटा था तब रंगा हाथ में दो संतरे लिये हमारे घर आया। वह बड़ा ही परोपकारी, बड़ा उदार है। मैंने सोचा कि अगर उसकी शादी हो जाये तो वह एक अच्छा गृहस्थ बनेगा, चार लोगों के काम आयेगा।

ज़रा देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद मैंने पूछा, ''रंगप्पा, तुम शादी कब करोगे?''

रंगा : ''मैं अभी शादी नहीं करूँगा।''

''क्यों भैया ?''

रंगा : ''मेरे लायक़ लड़की भी तो मिलनी चाहिए न ! हमारे एक साहब हैं। उन्होंने अभी छः महीने पहले शादी की है। वे करीब तीस साल के हैं। उनकी पत्नी शायद पच्चीस की है। मान लीजिए मैं एक छोटी लड़की से शादी कर लूँ और उससे मैं कोई प्रेम की बात करूँ तो वह उसे गाली ही समझेगी। बंगलौर की एक नाटक

मंडली ने 'शकुन्तला' नाटक खेला। शकुन्तला आजकल की तरह शादी करनेवाली लड़कियों के समान छोटी आयु की होती तो दुष्यन्त के प्रेम की बात समझ न पाती। कालिदास के नाटक का क्या मज़ा आता? शादी करनी हो तो ज़रा बड़ी लड़की से ही करनी चाहिए। नहीं तो चुपचाप रह जाना चाहिए। इसीलिए मैं अभी शादी करना नहीं चाहता।

''और कोई कारण है क्या?''

रंगा : ''हमें अपने आप लड़की को चुनने का मौक़ा होना चाहिए। हम वैसा कर सकते हैं। बड़ों की बात पर यदि हम 'हाँ' कर दें और वे अँगूठा चूसनेवाली लड़की लाकर सामने खड़ीकर दें तो भला कैसे मान लें ?

''एक तो करेला, दूसरे नीम चढ़ा ऐसा होगा न ?''

रंगा : (हँसते हुए) ''एग्ज़ेक़्टली ! हाँ एकदम।''

मैंने सोचा था कि जल्दी से इस लड़के की शादी कर दी जाए तो अच्छा गृहस्थ बनेगा। पर यह तो आजीवन ब्रह्मचारी बना रहना चाहता है। यह देखकर मैं बहुत व्याकुल हो उठा। कुछ देर बात करने के बाद मैंने रंगा को भेज दिया। बाद में प्रतिज्ञा की, इस लड़के की जल्दी से शादी करा डालनी है।

हमारे रामराय के घर उनकी भाँजी आयी हुई थी। लड़की ग्यारह वर्ष की थी और सुन्दर थी। बड़े शहर में रहने के कारण थोड़ा हारमोनियम और वीणा बजा लेती थी। गला बहुत ही मधुर था। माता-पिता के गुज़र जाने के कारण मामा उसे अपने घर ले आया था। उसके योग्य वर रंगा ही था। वह भी रंगा के लिए उपयुक्त कन्या थी।

मैं अक्सर रामराय के घर आया-जाया करता था। वह बच्ची मुझसे हिली-मिली हुई थी। अरे, उस लड़की का नाम बताना ही भूल गया। उसका नाम रत्ना था। अगले दिन प्रातः रामराय के घर जाकर मैंने उनकी पत्नी से कहा, ''छाँछ ले, जाने के लिए ज़रा रत्ना

को हमारे घर भेज दीजिए।''

रत्ना आयी। शुक्रवार का दिन होने से उसने अच्छी सी साड़ी पहन रखी थी। उसे कमरे में बैठाकर मैंने कहा, ''बहिन, अच्छा सा एक गाना तो सुना दे।'' तब रंगा को भी बुला भेजा था। रत्ना जब अपने सुमधुर कण्ठ से ''कान्ह बसो मोरे नैनन में'' गा रही थी तो रंगा पहुँचा। दरवाजे पर पहुँचते ही उसे डर लगा कि दहलीज पर पाँव रखते ही गीत बंद हो जाएगा। पर उसने धीरे से दरवाजे से झाँककर देखा। उसकी छाया पड़ने से रत्ना ने दरवाज़े की ओर देखा। अपरिचित को देखते ही उसने गाना रोक दिया।

बढ़िया आम खरीदकर खाते समय तनिक सा भी बेकार न जाय; पैसे लगे हैं; सोचकर जब जरा छिलका चखकर स्वाद देखकर, बाक़ी का खाने का प्रयास करने में पूरा आम हाथ से फिसल कर धरती पर जा गिरे तो आप की जो मनस्थिति होगी वही स्थिति रंगा की हुई। 'आपने बुलाया था ?' कहकर वह भीतर आकर कुर्सी पर बैठ गया।

रत्ना सिर झुकाए दूर जा खड़ी हुई। रंगा ने बार-बार उसकी ओर देखा। एक बार जब वह उसकी ओर देख रहा था तब उससे उसकी नज़र टकरा गयी। उसे बड़ा अपमान सा अनुभव हुआ होगा। काफ़ी देर तक कोई भी कुछ न बोला। बाद में रंगा ने ही पहल की और बोला ''मेरे आते ही गाना बन्द हो गया। इसलिए मैं चलता हूँ।'' उसने यह बात खाली मुँह से ही कह, पर भलामानस कुर्सी छोड़कर हिला तक नहीं। कलियुग में त्रिकर्ण

शुद्धि भला है ही कहाँ ?

रत्ना जाकर घर के भीतर भाग गयी।

थोड़ी देर मूक से बैठे रंगा ने पूछा, ''वह लड़की कौन है भाई साहब ?''

गुफा में घुसे बकरे की आहट सुनकर शेर ने बाहर से पूछा, ''भीतर कौन है ?'' बकरे ने भीतर से जवाब दिया ''कोई भी हो तो

क्या ? मैं एक ग़रीब जानवर हूँ। सिर्फ नौ नर शेर खा चुका हूँ, एक और चाहता हूँ। तुम नर हो या मादा ?’’ उसे सुन शेर भाग लिया। उसी बकरे की तरह मैंने कहा, कोई भी हो तो क्या ? तुम्हारे और मेरे लिए बेकार है। मेरी शादी हो चुकी है और तुम्हें शादी करनी नहीं है।’’

इस पर रंगा ने बड़ी लालसा से पूछा, ‘‘क्या अभी उस लड़की की शादी नहीं हुई ?’’ मन में इच्छा है यह उसने दिखाया तो नहीं पर, मैं समझ गया।

मैंने कहा, "हो गयी है। साल भर हो गया।"

यह सुनकर रंगा का मुंह भुने बैंगन जैसा हो गया। थोड़ी देर बाद रंगा बोला, "मुझे कुछ काम है, चलता हूँ।"

अगले दिन मैंने अपने पुरोहित जी से जाकर कहा, "कल मैं आपसे ज्योतिष पूछने आऊँगा। आवश्यक सामग्री तैयार रखे रहिएगा।" इसके साथ ही उनके कान में एक बात और भी फुसफुसा कर आया।

दोपहर को रंगा को देखा तो उसका मुंह वैसा ही लटका हुआ था। मैंने ही पूछा, "क्या बात है भई ? मालूम पड़ता है किसी सोच में डूबे हो?"

ऐसी कोई बात नहीं है, यों ही।"

"सिर दर्द है क्या? चलो वैद्य के यहाँ हो आयें।"

"सिर दर्द नहीं है । मैं रहता ही ऐसा हूँ।"..

"जब मेरी शादी की बात चल रही थी तब सब निश्चित होने तक मैं भी ऐसा ही रहा करता था। तुम्हारे साथ तो वैसी कोई बात नहीं है न ?"

रंगा ने मेरी ओर घूरकर देखा।

मैंने कहा, "चलो जरा शास्त्रीजी के पास हो आयें। तुम्हारी गृह-गति का ही जरा पता लगा आयें।" रंगा बिना कुछ सोचे उठकर खड़ा हो गया।

हम दोनों शास्त्रीजी के घर पहुंचे। उन्होंने मुझसे पूछा, "क्यों, क्या बात है श्याम ? तुम्हारे दर्शन भी दुर्लभ हो गये।"

श्याम यह कहानी बताने वाला आप का दास है।

उसका ढंग देखकर मुझे बड़ा क्रोध आया। मैं-'अरे! यह कैसी बात कहते हो, आज ही तो-कहना ही चाहता था पर शास्त्रीजी ने, "जरा अब अवकाश मिला होगा। कोई काम है क्या?" कहकर बात संभाल ली, नहीं तो मैं एक मूर्ख की तरह 'अरे आज सुबह ही मिला था' कहकर सारा गुड़-गोबर करने जा रहा था। बाद में मैंने अपने को संभाल लिया।

"हमारे करणीक के कुमार कब गाँव पधारे? क्या चाहिए था? यह तो हमारे घर आते ही नहीं।" इत्यादि व्यावहारिक बातें हुईं।

"तुम अपनी पोथी तो खोलो। हमारा रंगप्पा बड़ी चिन्ता में पड़ गया है। उसका क्या कारण है क्या यह बता सकते हो? जरा तुम्हारे ज्योतिष शास्त्र की भी परीक्षा हो जाय।" मैंने यह बात बड़े दर्प से कही। शास्त्री ने दो कागज, दो कौड़ियाँ, एक ताड़ पुस्तक आदि लेकर-"अरे भई यह तो अनादि शास्त्र है। इसकी भी एक कहानी है" कहकर उन्होंने एक कहानी सुनाई। वह कहानी मैं यहाँ नहीं बताऊँगा। इस कथा में यह कथा जोड़ना ठीक नहीं । यह कोई पुराण थोड़ा ही है। इसके अलावा आप ऊब भी जायेंगे और कोई मौका मिलेगा तब मैं वह बताऊंगा।

शास्त्रीजी ने होंठ हिलाते हुए उँगलियों पर कुछ गिनते हुए रंगा से पूछा, "आप का नक्षत्र कौन सा है ?" यह रंगा को मालूम न था। शास्त्रीजी ने, "कोई बात नहीं" कहते हुए सिर हिलाकर हिसाब लगाया आँखें। गंभीरता से मिचमिचा कर कहा-"कन्या के विषय में चिंता है।" उनका वह खेल देखकर मैं अपनी हंसी रोक नहीं पा रहा था। फिर भी मैं अपनी हँसी रोके बैठा था। उनकी बातें सुनते ही ठहाका मार कर कहा, "क्या बात है रंगप्पा ? मेरी बात ही सही निकल रही है।"

"वह कन्या कौन है?" यह बात पूछने वाला मैं आपका दास था।

कुछ सोचकर वे बोले, "सागर में मिलने वाले पदार्थ के नाम की लड़की होनी चाहिए।"

"क्या उसका नाम कमल हो सकता है?"

"हो सकता है।"

"काई हो सकती है?"

"यदि कमल न हो तो, काई क्या? मोती और रत्न...?"

"रत्न? रामराय के घर में एक रत्न नाम की लड़की आयी है। खैर इस बात को रहने दीजिए, कन्या लाभ तो होगा न?"

फिर जरा सोचकर वे बोले, "होगा।"

रंगा हैरान हो गया। उसमें जरा सन्तोष भी था। मैंने वह देखकर कहा, "उसकी तो शादी हो चुकी है।" यह कहकर मैंने रंगा की ओर मुड़कर देखा। बेचारे का मुंह उतर गया था।

शास्त्रीजी बोले, "यह सब मैं नहीं जानता और कोई हो सकती है। मैंने तो शास्त्र की बात दोहराई है।"

हम वहाँ से चल पड़े। लौटते समय रामराय के घर के दरवाजे पर रत्ना खड़ी थी। उसे देखकर मैं उनके घर के भीतर जाकर पुनः लौट आया । आते ही मैंने कहा, "कैसी अचरज की बात है। इस लड़की की अभी शादी नहीं हुई है। मुझसे किसी ने उस दिन बताया था कि हो चुकी है। अब शास्त्र की बात भी सही लगती है न रंगप्पा? मुझे ऐसा नहीं लगता कि तुम उस लड़की के बारे में सोच रहे थे। हाँ बताओ मध्वाचार्य की कसम खा कर बताओ? मुझसे कोई बात छुपाना नहीं । उनकी कही सारी बात सच है कि नहीं ?"

मैं कह नहीं सकता कि अगर कोई और होता तो वह बात ही बता देता। उसने कहा, "शास्त्र की बात में ज्यादा सच्चाई है। उन्होंने जो कहा सब सच है?"

उस दिन शाम को शास्त्रीजी कुएँ पर आये थे। मैं भी गया था। तब मैंने कहा, "अरे शास्त्रीजी, मैंने जो कुछ कहने के लिए कहा था आपने तो उससे ज्यादा कह दिया और उसके मन में जरा भी सन्देह पैदा नहीं हुआ। आपके शास्त्र का भी क्या कहें!" शास्त्रीजी बोले, "आपने भला क्या बताया था? जो शास्त्र के आधार पर पता लगाया जा सकता था, उसी को तो आपने भी बताया था । आपने ठीक ही बताया था। मैंने उसी को दोहराया।" यही तो है न समझदारों का काम।

परसों रंगप्पा ने मुझे घर पर भोजन के लिए बुलाया था। मैंने पूछा, "आज ऐसा क्या विशेष है ?"

"श्याम का जन्मदिन है । आज उसकी चौथी वर्षगांठ है।"

"अरे भैया, 'श्याम1' नाम बहुत अच्छा नहीं। मैं तो एकदम कोल्हू की लकड़ी जैसा काला कलूटा हूँ। उस चाँद से बच्चे का नाम मेरे नाम पर क्यों रखा? तुम्हारे और रत्ना के बचपने का क्या कहें। अंग्रेजों का तरीका ऐसा होता है।' अगर तुम्हारी पत्नी का अब आठवाँ महीना चल रहा है तो मां को साथ क्यों नहीं लाये?"

"दीदी और मां दोनों आयी हैं।"

मैं खाने पर गया था। जाते ही श्याम आकर मेरे पाँव पर पड़ा। वह वहीं चिपक कर बैठना चाहता था। मैंने उसे गोद में उठा लिया। उसके गाल चूमकर उसकी कोमल उंगली में एक अँगूठी पहनाई।

अब आप कृपा करके अपने दास को आज्ञा दीजिए। मैं तो आपकी सेवा के लिए सदा तैयार हूँ। आप ऊब तो नहीं गये न?

~ Ω ~ Ω ~

3. रज़िया

~ रामवृक्ष बेनीपुरी

लेखक परिचय:~

रामवृक्ष बेनीपुरी का जन्म बिहार के मुजफ्फरपुर के बेनीपुर गाँव में 23 दिसंबर 1902 को हुआ था। इनके पिता श्री फूलवंत सिंह एक साधारण किसान थे। बचपन में ही इनके माता-पिता का देहांत हो गया था। इनकी मौसी ने इनका लालन-पालन किया था।

बेनीपुरी जी ने उपन्यास, नाटक, कहानी, स्मरण, निबंध और रेखा चित्र आदि सभी गद्य विधाओं में अपनी कलम उठाई है। रामवृक्ष बेनीपुरी का जीवन परिचय में आप जानेंगे उनके लिखे हुए ग्रंथ, नाटक आदि –

भारत ने अंग्रेजों से अपनी आज़ादी पाने के लिए बहुत कुछ कुर्बान किया है। आपको भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद, खुदीराम बोस, मंगल पाण्डेय आदि जैसे वीर स्वतंत्रता सेनानियों का बलिदान तो याद होगा लेकिन बिहार की माटी के लाल रामवृक्ष बेनीपुरी की आजादी की लड़ाई के बारे में कम ही लोगों को पता होगा। तो आइए जानते हैं इस महान स्वतंत्रता सेनानी और साहित्यकार रामवृक्ष बेनीपुरी का जीवन परिचय।

~ Ω ~ Ω ~

कानों में चाँदी की बालियाँ, गले में चाँदी का हैकल, हाथों में चाँदी के कंगन और पैरों में चाँदी की गोड़ाई—भरबाँह की बूटेदार क़मीज़ पहने, काली साड़ी के छोर को गले में लपेटे, गोरे चेहरे पर लटकते हुए कुछ बालों को सँभालने में परेशान वह छोटी सी लड़की जो उस दिन मेरे सामने आकर खड़ी हो गई थी—अपने बचपन की उस रज़िया की स्मृति ताज़ा हो उठी, जब मैं अभी उस दिन अचानक उसके गाँव में जा पहुँचा।

हाँ, यह मेरे बचपन की बात है। मैं क़साईख़ाने से रस्सी तुड़ाकर भागे हुए बछड़े की तरह उछलता हुआ अभी-अभी स्कूल से आया था और बरामदे की चौकी पर अपना बस्ता स्लेट पटककर मौसी से छठ में पके ठेकुए लेकर उसे कुतर-कुतर कर खाता हुआ ढेंकी पर झूला झूलने का मज़ा पूरा करना चाह रहा था कि उधर से आवाज़ आई—'देखना, बबुआ का खाना छू मत देना। और उसी आवाज़ के साथ मैंने देखा, यह अजीब रूप-रंग की लड़की मुझसे दो-तीन गज़ आगे खड़ी हो गई।

मेरे लिए यह रूप-रंग सचमुच अजीब था। ठेठ हिंदुओं की बस्ती है मेरी और मुझे मैले पेटिए में भी अधिक नहीं जाने दिया जाता। क्योंकि सुना है, बचपन में मैं एक मेले में खो गया था। मुझे कोई औघड़ लिए जा रहा था कि गाँव की एक लड़की की नज़र पड़ी और मेरा उद्धार हुआ। मैं माँ-बाप का इकलौता—माँ चल बसी थीं। इसलिए उनकी इस एकमात्र धरोहर को मौसी आँखों में जुगोकर रखती। मेरे गाँव में भी लड़कियों की कमी नहीं; किंतु न उनकी यह वेश-भूषा, न यह रूप-रंग मेरे गाँव की लड़कियाँ कानों में बालियाँ कहाँ डालती और भरबाँह की क़मीज़ पहने भी उन्हें कभी नहीं देखा और गोरे चेहरे तो मिले हैं, किंतु इसकी आँखों में जो एक अजीब क़िस्म का नीलापन दीखता, वह कहाँ? और, समुचे चेहरे की काट भी कुछ निराली ज़रूर तभी तो मैं उसे एकटक घूरने लगा।

यह बोली थी रज़िया की माँ, जिसे प्रायः ही अपने गाँव में चूड़ियों की खँचिया लेकर आते देखता आया था। वह मेरे आँगन में चूड़ियों का बाज़ार पसारकर बैठी थीं और कितनी बहू-बेटियाँ उसे घेरे हुई थीं। मुँह से भाव-साव करती और हाथ से ख़रीदारों के हाथ में चूड़ियाँ चढ़ाती वह सौदे पटाए जा रही थी। अब तक उसे अकेले ही आते-जाते देखा था; हाँ, कभी-कभी उसके पीछे कोई मर्द होता जो चूड़ियों की खाँची ढोता। यह बच्ची आज पहली बार आई थी

और न जाने किस बाल-सुलभ उत्सुकता ने उसे मेरी ओर खींच लिया था। शायद वह यह भी नहीं जानती थी कि किसी के हाथ का खाना किसी के निकट पहुँचने से ही छू जाता है। माँ जब अचानक चीख़ उठी, वह ठिठकी सहमी—उसके पैर तो वहीं बँध गए। किंतु इस ठिठक ने उसे मेरे बहुत निकट ला दिया, इसमें संदेह नहीं।

मेरी मौसी झट उठी, घर में गई और दो ठेकुए और एक कसार लेकर उसके हाथों में रख दिए। वह लेती नहीं थी, किंतु अपनी माँ के आग्रह पर हाथ में रख तो लिया, किंतु मुँह से नहीं लगाया! मैंने कहा—खाओ! क्या तुम्हारे घरों में से सब नहीं बनते? छठ का व्रत नहीं होता? कितने प्रश्न—किंतु सबका जवाब 'न' में ही और वह भी मुँह से नहीं, ज़रा सा गरदन हिलाकर और गरदन हिलाते ही चेहरे पर गिरे बाल की जो लटें हिल-हिल उठती, वह उन्हें परेशानी से संभालने लगती।

जब उसकी माँ नई ख़रीदारिनों की तलाश में मेरे आँगन से चली, रज़िया भी उसके पीछे हो लो। में खाकर, मुँह धोकर अब उसके निकट था और जब वह चली, जैसे उसकी डोर में बँधा थोड़ी दूर तक घिसटता गया। शायद मेरी भावुकता देखकर ही चूड़ीहारिनों के मुँह पर खेलने वाली अजस्त्र हँसी और चुहल में ही उसकी माँ बोली—बबुआजी, रज़िया से ब्याह कीजिएगा? फिर बेटी की और मुख़ातिब होती मुस्कुराहट में कहा—क्यों रे रज़िया, यह दुलहा तुम्हें पसंद है? उसका यह कहना कि मैं मुड़कर भागा ब्याह? एक मुसलमानिन से? अब रज़िया की माँ ठठा रही थी और रज़िया सिमटकर उसके पैरों में लिपटी थी, कुछ दूर निकल जाने पर मैंने मुड़कर देखा।

रज़िया, चूड़ीहारिन! वह इसी गाँव की रहनेवाली थी। बचपन में इसी गाँव में रही और जवानी में भी। क्योंकि मुसलमानों की गाँव में भी शादी हो जाती है न! और यह अच्छा हुआ- क्योंकि बहुत

दिनों तक प्राय: उससे अपने गाँव में ही भेंट हो जाया करती थी।

मैं पढ़ते-पढ़ते बढ़ता गया। पढ़ने के लिए शहरों में जाना पड़ा। छुट्टियों में जब-तब आता इधर रज़िया पढ़ तो नहीं सकी, हाँ, बढ़ने में मुझसे पीछे नहीं रही। कुछ दिनों तक अपनी माँ के पीछे-पीछे घूमती फिरी। अभी उसके सिर पर चूड़ियों की खँचिया तो नहीं पड़ी, किंतु ख़रीदारिनों के हाथों में चूड़ियाँ पहनाने की कला वह जान गई थी। उसके हाथ मुलायम हैं, बहुत मुलायम नई बहुओं की यही राय थी। वे उसी के हाथ से चूड़ियाँ पहनना पसंद करतीं। उसकी माँ इससे प्रसन्न ही हुई—जब तक रज़िया चूड़ियाँ पहनाती, वह नई-नई ख़रीदारिनें फँसाती।

रज़िया बढ़ती गई। जब-जब भेंट होती, मैं पाता, उसके शरीर में नए-नए विकास हो रहे हैं; शरीर में और स्वभाव में भी। पहली भेंट के बाद पाया था, वह कुछ प्रगल्भ हो गई है। मुझे देखते ही दौड़कर निकट आ जाती, प्रश्न पर प्रश्न पूछती। अजीब अटपटे प्रश्न! देखिए तो ये नई बालियाँ आपको पसंद हैं? क्या शहरों में ऐसी ही बालियाँ पहनी जाती हैं? मेरी माँ शहर से चुड़ियाँ लाती है, मैंने कहा है, वह इस बार मुझे भी ले चलें। आप किस तरफ़ रहते हैं वहाँ? क्या भेंट हो सकेगी? वह बके जाती, मैं सुनता जाता! शायद जवाब की ज़रूरत यह भी नहीं महसूस करती।

फिर कुछ दिनों के बाद पाया, वह अब कुछ सकुचा रही है। मेरे निकट आने के पहले वह इधर-उधर देखती और जब कुछ बातें करती तो ऐसी चौकन्नी-सी कि कोई देख न ले, सुन न ले। एक दिन जब वह इसी तरह बातें कर रही थी कि मेरी भौजी ने कहा—देखियो री रज़िया बबुआजी को फुसला नहीं लीजियो। वह उनकी और देखकर हँस तो पड़ी, किंतु मैंने पाया, उसके दोनों गाल लाल हो गए हैं और उन नीली आँखों के कोने मुझे सजल-से लगे। मैंने तब से ध्यान दिया, जब हम लोग कहीं मिलते हैं, बहुत सी आँखें हम पर भालों की नौक ताने रहती हैं।

रज़िया बढ़ती गई, बच्चों से किशोरी हुई और अब जवानी के फूल उसके शरीर पर खिलने लगे हैं। अब भी वह माँ के साथ ही आती है; किंतु पहले वह माँ की एक छाया मात्र लगती थी, अब उसका स्वतंत्र अस्तित्व है। और उसकी छाया बनने के लिए कितनों के दिलों में कसमसाहट है जब वह बहनों को चूड़ियाँ पहनाती होती है, कितने भाई तमाशा देखने को वहाँ एकत्र हो जाते हैं। क्या? बहनों के प्रति अतृभाव या रज़िया के प्रति अज्ञात आकर्षण उन्हें खींच लाता है? जब वह बहुओं के हाथों में चूड़ियाँ ठेलती होती है, पतिदेव दूर खड़े कनखियों से देखते रहते हैं। क्या? अपनी नवोढ़ा की कोमल कलाइयों पर कोड़ा करती हुई रज़िया की पतली उँगलियों को! और, रज़िया को इसमें रस मिलता है। पतियों से चुहले करने से भी वह बाज़ नहीं आती—बाबू बड़ी महीन चूडियाँ हैं! ज़रा देखिएगा, कहीं चटक न जाएँ! पतिदेव भागते हैं, बहुएँ खिलखिलाती हैं। रज़िया ठट्ठा लगाती है। अब वह अपने पेशे में निपुण होती जाती है।

हाँ, रज़िया अपने पेशे में भी निपुण होती जाती थी। चूड़ीहारिन के पेशे के लिए सिर्फ़ यही नहीं चाहिए कि उसके पास रंग-बिरंगी चूड़ियाँ हों—सस्ती, टिकाऊ, टटके-से-टटके फैशन की। बल्कि यह पेशा चूड़ियों के साथ चूड़ीहारिनों में बनाव-शृंगार रूप-रंग, नाज़-ओ-अदा भी खोजता है, जो चूड़ी पहननेवालियों को ही नहीं, उनको भी मोह सके, जिनकी जेब से चूड़ियों के लिए पैसे निकलते हैं। सफल चूड़ीहारिन यह रज़िया की माँ भी किसी ज़माने में क्या कुछ कम रही होगी! खंडहर कहता है, इमारत शानदार थी!

ज्यों-ज्यों शहर में रहना बढ़ता गया, रज़िया से भेंट भी दुर्लभ होती गई और एक दिन वह भी आया, जब बहुत दिनों पर उसे अपने गाँव में देखा। पाया, उसके पीछे एक नौजवान चूड़ियों की खाँची सिर पर लिए है। मुझे देखते ही वह सहमी, सिकुड़ी और

मैंने मान लिया, यह उसका पाति है। किंतु तो भी अनजान-सा पूछ ही लिया—इस जमूरे को कहाँ से उठा लाई है रे? इसी से पूछिए, साथ लग गया तो क्या करूँ? नौजवान मुस्कुराया, रज़िया भी हँसी, बोली यह मेरा ख़ाविंद है, मालिक!

ख़ाविंद! बचपन की उस पहली मुलाक़ात में उसकी माँ ने दिल्लगी-दिल्लगी में जो कह दिया था, न जाने, वह बात कहाँ सोई पड़ी थी! अचानक वह जगी और मेरी पेशानी पर उस दिन शिकन ज़रूर उठ आए होंगे, मेरा विश्वास है और एक दिन वह भी आया कि मैं भी ख़ाविंद बना! मेरी रानी को सुहाग की चूड़ियाँ पहनाने उस दिन यही रज़िया आई, और उस दिन मेरे आँगन में कितनी धूम मचाई इस नटखट ने यह लूँगी वह लूँगी और ये मुँहमाँगी चीज़ें नहीं मिलीं तो वह लूँगी कि दुलहन टापती रह जाएँगी! हट हट, तू बबुआजी को ले जाएगी तो फिर तुम्हारा यह हसन क्या करेगा? भौजी ने कहा। यह भी टापता रहेगा बहुरिया, कहकर रज़िया ठट्ठा मारकर हँसी और दौड़कर हसन से लिपट गई। ओहो, मेरे राजा, कुछ दूसरा न समझना हसन भी हँस पड़ा। रज़िया अपनी प्रेमकथा सुनाने लगी किस तरह यह हसन उसके पीछे पड़ा, किस तरह झंझटें आईं, फिर किस तरह शादी हुई और वह आज भी किस तरह छाया-सा उसके पीछे घूमता है। न जाने कौन सा डर लगा रहता है इसे? और फिर, मेरी रानी की कलाई पकड़कर बोली—मालिक भी तुम्हारे पीछे इसी तरह छाया की तरह डोलते रहें, दुलहन! सारा आँगन हँसी से भर गया था और उस हँसी में रज़िया के कानों की बालियों ने अजीब चमक भर दी थी, मुझे ऐसा ही लगा था।

जीवन का रथ खुरदरे पथ पर बढ़ता गया। मेरा भी रज़िया का भी। इसका पता उस दिन चला, जब बहुत दिनों पर उससे अचानक पटना में भेंट हो गई। यह अचानक भेंट तो थी; किंतु क्या इसे भेंट कहा जाए?

मैं अब ज़ियादातर घर से दूर-दूर ही रहता। कभी एकाध दिन के लिए घर गया तो शाम को गया, सुबह भागा। तरह-तरह की ज़िम्मेदारियाँ तरह-तरह के जंजाल! इन दिनों पटना में था, यूँ कहिए, पटना सिटी में एक छोटे से अख़बार में था—पीर-बावर्ची-भिश्ती की तरह! यो जो लोग समझते कि मैं संपादक ही हूँ। उन दिनों न इतने अख़बार थे, न इतने संपादक। इसलिए मेरी बड़ी क़दर है, यह मैं तब जानता जब कभी दफ़्तर से निकलता। देखता, लोग मेरी ओर उँगली उठाकर फुसफुसा रहे हैं। लोगों का मुझ पर यह ध्यान—मुझे हमेशा अपनी पद-प्रतिष्ठा का ख़याल रखना पड़ता।

एक दिन मैं चौक के एक प्रसिद्ध पानवाले की दुकान पर पान खा रहा था। मेरे साथ मेरे कुछ प्रशंसक युवक थे। एक-दो बुजुर्ग भी आकर खड़े हो गए। हम पान खा रहे थे और कुछ चुहलें चल रही थीं कि एक बच्चा आया और बोला, 'बाबू, वह औरत आपको बुला रही है।'

औरत! बुला रही है? चौक पर! मैं चौंक पड़ा। युवकों में थोड़ी हलचल, बुजुगों के चेहरों पर की रहस्यमयी मुस्कान भी मुझसे छिपी नहीं रही। औरत! कौन? मेरे चेहरे पर ग़ुस्सा था, वह लड़का सिटपिटाकर भाग गया।

पान खाकर जब लोग इधर-उधर चले गए, अचानक पाता हूँ, मेरे पैर उसी और उठ रहे हैं, जिस और उस बच्चे ने उँगली से इशारा किया था। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर पीछे देखा, परिचितों में से कोई देख तो नहीं रहा है। किंतु इस चौक की शाम की रूमानी फ़िज़ा में किसी को किसी की ओर देखने की कहाँ फ़ुरसत! मैं आगे बढ़ता गया और वहाँ पहुँचा, जहाँ उससे पूरब वह पीपल का पेड़ है। वहाँ पहुँच ही रहा था कि देखा, पेड़ के नीचे चबूतरे की तरफ़ से एक स्त्री बढ़ी आ रही है और निकट पहुँचकर यह कह उठी 'सलाम मालिक!'

धक्का-सा लगा, किंतु पहचानते देर नहीं लगी—उसने ज्यों ही सिर उठाया, चाँदी की बालियाँ जो चमक उठीं!

'रज़िया! यहाँ कैसे?' मेरे मुँह से निकल पड़ा।

'सौदा-सुलफ करने आई हूँ, मालिक! अब तो नए क़िस्म के लोग हो गए न? अब लाख की चूडियाँ कहाँ किसी को भाती हैं। नए लोग, नई चूड़ियाँ! साज-सिंगार की कुछ और चीज़ें भी ले जाती हूँ—पॉडर, किलप, क्या क्या चीज़ें हैं न। नया ज़माना, दुलहनों के नए-नए मिजाज!'

फिर ज़रा सा रुककर बोली, 'सुना था, आप यहाँ रहते हैं, मालिका में तो अकसर आया करती हूँ।'

और यह जब तक पूछें कि अकेली हो या कि एक अधवयस्क आदमी ने आकर सलाम किया। यह हसन था। लंबी-लंबी दाढ़ियाँ, पाँच हाथ का लंबा आदमी, लंबा और मुस्टंडा भी। 'देखिए मालिक, यह आज भी मेरा पीछा नहीं छोड़ता!' यह कहकर रज़िया हँस पड़ी। अब रज़िया वह नहीं थी, किंतु उसकी हँसी नहीं थी। वही हँसी, वही चुहल! इधर-उधर की बहुत सी बातें करती रही और न जाने कब तक जारी रखती कि मुझे याद आया, मैं कहाँ खड़ा हूँ और अब मैं कौन हूँ कोई देख ले तो?

किंतु वह फ़ुरसत दे तब न! जब मैंने जाने की बात की, हसन की ओर देखकर बोली, 'क्या देखते हो, ज़रा पान भी तो मालिक को खिलाओ। कितनी बार हुमच-हुमचकर भरपेट ठूँस चुके हो बाबू के घर।'

जब हसन पान लाने चला गया, रज़िया ने बताया कि किस तरह दुनिया बदल गई है। अब तो ऐसे भी गाँव हैं, जहाँ के हिंदू मुसलमानों के हाथ से सौदे भी नहीं ख़रीदते। अब हिंदू चूड़ीहारिने हैं, हिंदू दर्ज़ी हैं। इसलिए रज़िया जैसे ख़ानदानी पेशेवालों को बड़ी दिक़्क़त हो गई है। किंतु, रज़िया ने यह ख़ुशख़बरी सुनाई—मेरे गाँव में यह पागलपन नहीं, और मेरी रानी तो सिवा रज़िया के

किसी दूसरे के हाथ से चूड़ियाँ लेती ही नहीं।

हसन का लाया पान खाकर जब मैं चलने को तैयार हुआ, वह पूछने लगी, 'तुम्हारा डेरा कहाँ है?' मैं बड़े पशोपेश में पड़ा। 'डरिए मत मालिक, अकेले नहीं आऊँगी, यह भी रहेगा। क्यों मेरे राजा?' यह कहकर वह हसन से लिपट पड़ी 'पगली, पगली, यह शहर है, शहर!' यूँ हसन ने हँसते हुए बाह छुड़ाई और बोला, 'बाबू, बाल बच्चोंवाली हो गई, किंतु इसका बचपना नहीं गया।'

और दूसरे दिन पाता हूँ, रज़िया मेरे डेरे पर हाज़िर है! 'मालिक, ये चूड़ियाँ रानी के लिए।' कहकर मेरे हाथों में चूड़ियाँ रख दी।

मैंने कहा, 'तुम तो घर पर जाती ही हो, लेतो जाओ, वहीं दे देना।'

नहीं मालिक, एक बार अपने हाथ से भी पिहानाकर देखिए!' कह खिलखिला पड़ी। और जब मैंने कहा, 'अब इस उम्र में?' तो वह हसन की ओर देखकर बोली, पूछिए इससे आज तक मुझे यही चूड़ियाँ पिनहाता है या नहीं?' और, जब हसन कुछ शरमाया, वह बोली, 'घाघ है मालिक, घाघ! कैसा मुँह बना रहा है इस समय! लेकिन जब हाथ-में-हाथ लेता है,' ठठाकर हँस पड़ी, इतने ज़ोर से कि मैं चौंककर चारों तरफ़ देखने लगा।

हाँ, तो अचानक उस दिन उसके गाँव में पहुँच गया। चुनाव का चक्कर—जहाँ न ले जाए, जिस औघट-घाट पर न खड़ा कर दें! नाक में पेट्रोल के धुएँ की गंध, कान में साँय-साँय की आवाज़, चेहरे पर गरद-गुबार का अंबार परेशान, बदहवास; किंतु उस गाँव में ज्यों ही मेरी जीप घुसी, मैं एक ख़ास क़िस्म की भावना से अभिभूत हो गया।

यह रज़िया का गाँव है। यहाँ रज़िया रहती थी। किंतु क्या आज मैं यहाँ यह भी पूछ सकता हूँ कि यहाँ कोई रज़िया नाम की चूड़ीहारिन रहती थी, या है? हसन का नाम लेने में भी शर्म लगती थी। मैं वहाँ नेता बनकर गया था, मेरी जय-जयकार हो रही थी। कुछ लोग मुझे घेरे खड़े थे। जिसके दरवाज़े पर जाकर पान

खाऊँगा, वह अपने को बड़भागी समझेगा जिससे दो बातें कर लूँगा, वह स्वयं चर्चा का एक विषय बन जाएगा। इस समय मुझे कुछ ऊँचाई पर ही रहना चाहिए।

जीप से उतरकर लोगों से बातें कर रहा था, या यूँ कहिए कि कल्पना के पहाड़ पर खड़े होकर एक आने वाले स्वर्ण युग का संदेश लोगों को सुना रहा था, किंतु दिमाग़ में कुछ गुत्थियाँ उलझी थीं। जीभ अभ्यासवश एक काम किए जा रही थी, अंतर्मन कुछ दूसरा ही ताना-बाना बुन रहा था। दोनों में कोई तारतम्य न था; किंतु इसमें से किसी एक की गति में भी क्या बाधा डाली जा सकती थी? कि अचानक लो, यह क्या? वह रज़िया चली आ रही है! रज़िया! वह बच्ची, अरे, रज़िया फिर बच्ची हो गई? कानों में वे ही बालियाँ, गोरे चेहरे पर वे ही नीली आँखें, वही भरबाँह की क़मीज़, वे ही कुछ लटें, जिन्हें सँभालती बढ़ी आ रही है। बीच में चालीस पैंतालीस साल का व्यवधान! अरे, मैं सपना तो नहीं देख रहा? दिन में सपना! वह आती है, जबरन ऐसी भीड़ में घुसकर मेरे निकट पहुँचती हैं, सलाम करती हैं और मेरा हाथ पकड़कर कहती है, 'चलिए मालिक, मेरे घर।'

मैं भौचक्का, कुछ सूझ नहीं रहा, कुछ समझ में नहीं आ रहा! लोग मुस्कुरा रहे हैं नेताजी, आज आपकी कलई खुलकर रही! नहीं, यह सपना है! कि कानों में सुनाई पड़ा, कोई कह रहा है—कैसी शोख़ लड़की! और दूसरा बोला—ठीक अपनी दादी जैसी! और तीसरे ने मेरे होश की दवा दी—यह रज़िया की पोती है, बाबू! बेचारी बीमार पड़ी है। आपकी चर्चा अकसर किया करती है। बड़ी तारीफ` करती है। बाबू, फुरसत हो तो ज़रा देख लीजिए, न जाने बेचारी जीती है या...

मैं रज़िया के आँगन में खड़ा हूँ। ये छोटे-छोटे साफ़-सुथरे घर, यह लिपा पुता चिक्कन ढुर-ढुर आँगन! भरी-पूरी गृहस्थी—मेहनत और दयानत की देन। हसन चल बसा है, किंतु अपने पीछे

तीन हसन छोड़ गया है। बड़ा बेटा कलकत्ता कमाता है, मँझला पुश्तैनी पेशे में लगा है, छोटा शहर में पढ़ रहा है। यह बच्ची बड़े बेटे की बेटी। दादा का सिर पोते में, दादी का चेहरा पोती में। बहू रज़िया! यह दूसरी रज़िया मेरी उँगली पकड़े पुकार रही है—दादी, ओ दादी! घर से निकल मालिक दादा आ गए! किंतु पहली 'वह' रज़िया निकल नहीं रहीं। कैसे निकले? बीमारी के मैले कुचैले कपड़े में मेरे सामने कैसे आवे?

रज़िया ने अपनी पोती को भेज दिया, किंतु उसे विश्वास न हुआ कि हवागाड़ी पर आनेवाले नेता अब उसके घर तक आने की तकलीफ़ कर सकेंगे? और, जब सुना, मैं आ रहा हूँ तो बहुओं से कहा—ज़रा मेरे कपड़े तो बदलवा दो—मालिक से कितने दिनों पर भेंट हो रही है न!

उसकी दोनों पतोहुएँ उसे सहारा देकर आँगन में ले आई रज़िया—हाँ, मेरे सामने रज़िया खड़ी थी दुबली-पतली, रूखी-सूखी। किंतु जब नज़दीक आकर उसने 'मालिक, सलाम' कहा, उसके चेहरे से एक क्षण के लिए झुर्रियाँ कहाँ चली गई, जिन्होंने उसके चेहरे को मकड़जाला बना रखा था। मैंने देखा, उसका चेहरा अचानक बिजली के बल्ब की तरह चमक उठा और चमक उठीं वे नीली आँखें, जो कोटरों में धँस गई थीं! और, अरे चमक उठी हैं आज फिर वे चाँदी की बालियाँ और देखो, अपने को पवित्र कर लो! उसके चेहरे पर फिर अचानक लटककर चमक रही हैं वे लटें, जिन्हें समय ने धो-पोंछकर शुभ-श्वेत बना दिया है।

~ Ω ~ Ω ~

4. वह चीनी भाई

~: महादेवी वर्मा

लेखिका परिचय:~

'आधुनिक युग की मीरा' कही जाने वाली महादेवी वर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के फ़र्रुख़ाबाद में होली के दिन 1907 में हुआ था। उनकी आरंभिक शिक्षा उज्जैन में हुई और एम. ए. उन्होंने संस्कृत में प्रयाग विश्वविद्यालय से किया। बचपन से ही चित्रकला, संगीतकला और काव्यकला की ओर उन्मुख महादेवी विद्यार्थी जीवन से ही काव्य प्रतिष्ठा पाने लगी थीं। वह बाद के वर्षों में लंबे समय तक प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्राचार्या रहीं।

वह इलाहाबाद से प्रकाशित 'चाँद' मासिक पत्रिका की संपादिका थीं और प्रयाग में 'साहित्यकार संसद' नामक संस्था की स्थापना की थी। 'निराला वैशिष्ट्य' की स्वामिनी महादेवी वर्मा छायावाद की चौथी स्तंभ भी कही जाती हैं। प्रणय एवं वेदनानुभूति, जड़ चेतन का एकात्म्य भाव, सौंदर्यानुभूति, मूल्य चेतना, रहस्यात्मकता उनकी मुख्य काव्य-वस्तु है। वह प्रधानतः गीति कवयित्री हैं जिनके काव्य में परंपरा और मौलिकता का अद्वितीय समन्वय नज़र आता है। शब्द-निरूपण, वर्ण-विन्यास, नाद-सौंदर्य और उक्ति-सौंदर्य-सभी दृष्टियों से वह भाषा पर सहज अधिकार रखती हैं।

उन्होंने कविताओं के साथ ही रेखाचित्र, संस्मरण, निबंध, डायरी आदि गद्य विधाओं में भी योगदान किया है। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्य गीत', 'यामा', 'दीपशिखा', 'साधिनी', 'प्रथम आयाम', 'सप्तपर्णा', 'अग्निरेखा' उनके काव्य-संग्रह हैं। रेखाचित्रों का संकलन 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' में किया गया है। 'शृंखला की कड़ियाँ', 'विवेचनात्मक गद्य', 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध', 'संकल्पिता', 'हिमालय', 'क्षणदा' उनके निबंधों का संकलन है।

वह साहित्य अकादेमी की सदस्यता प्राप्त करने वाली पहली लेखिका थीं। भारत सरकार ने उन्हें पद्म भूषण और पद्म विभूषण पुरस्कारों से सम्मानित किया। उन्हें यामा के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। भारत सरकार ने उनके सम्मान में जयशंकर प्रसाद के साथ युगल डाक टिकट भी जारी किया।

~ Ω ~ Ω ~

मुझे चीनियों में पहचानकर स्मरण रखने योग्य विभिन्नता कम मिलती है। कुछ समतल मुख एक ही साँचे में ढले से जान पड़ते हैं और उनकी एक रसता दूर करनेवाली, वस्त्र पर पड़ी हुई सिकुड़न जैसी नाक की गठन में भी विशेष अंतर नहीं दिखाई देता।

कुछ तिरछी अधखुली और विरल भूरी बरूनियोंवाली आँखों की तरल रेखाकृति देख कर भ्रांति होती है कि वे सब एक नाप के अनुसार किसी तेज़ धार से चीर कर बनाई गई हैं। स्वाभाविक पीतवर्ण धूप के चरण चिह्नों पर पड़े हुए धूल के आवरण के कारण कुछ ललछौंहे सूखे पत्ते की समानता पर लेता है। आकार प्रकार वेशभूषा सब मिल कर इन दूर देशियों को यंत्र चालित पुतलों की भूमिका दे देते हैं, इसी से अनेक बार देखने पर भी एक फेरी वाले चीनी को दूसरे से भिन्न कर के पहचानना कठिन है।

पर आज उन मुखों की एकरूप समष्टि में मुझे आर्द्र नीलिमामयी आँखों के साथ एक मुख स्मरण आता है जिसकी मौन भंगिमा कहती है - "हम कार्बन की कापियाँ नहीं हैं। हमारी भी एक कथा है। यदि जीवन की वर्णमाला के संबंध में तुम्हारी आँखें निरक्षर नहीं तो तुम पढ़ कर देखो न!"

कई वर्ष पहले की बात है मैं तांगे से उतर कर भीतर आ रही थी कि भूरे कपड़े का गठ्ठर बाएँ कंधे के सहारे पीठ पर लटकाए हुए और दाहिने हाथ में लोहे का गज घुमाता हुआ चीने फेरी वाला फाटक के बाहर आता हुआ दिखा। संभवत: मेरे घर

को बंद पाकर वह लौटा जा रहा था। "कुछ लेगा मेमसाहब!" - दुर्भाग्य का मारा चीनी! उसे क्या पता कि वह संबोधन मेरे मन में रोष की सबसे तुंग तरंग उठा देता है। मइया, माता, जीजी, दिदिया, बिटिया आदि न जाने कितने संबोधनों से मेरा परिचय है और सब मुझे प्रिय हैं, पर यह विजातीय संबोधन मानो सारा परिचय छीन कर मुझे गाउन में खड़ा कर देता है। इस संबोधन के उपरांत मेरे पास से निराश होकर न लौटना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

मैने अवज्ञा से उत्तर दिया-मैं फारन (विदेशी) नहीं ख़रीदती। "हम क्या फारन है? हम तो चाइना से आता है।" कहने वाले के कंठ में सरल विस्मय के साथ उपेक्षा की चोट से उत्पन्न क्षोभ भी था। इस बार रुक कर उत्तर देने वाले को ठीक से देखने की इच्छा हुई। धूल से मटमैले सफ़ेद किरमिच के जूते में छोटे पैर छिपाए, पतलून और पाजामे का सम्मिश्रित परिणाम जैसा पाजामा और कुर्ता तथा कोट की एकता के आधार पर सिला कोट पहने, उधड़े हुए किनारों से पुरानेपन की घोषणा करते हुए हैट से आधा माथा ढके दाढ़ी मूछ विहीन दुबली नाटी जो मूर्ति खड़ी थी वह तो शाश्वत चीनी है। उसे सबसे अलग कर के देखने का प्रश्न जीवन में पहली बार उठा।

मेरी उपेक्षा से उस विदेशी को चोट पहुँची, यह सोच कर मैंने अपनी नहीं को और अधिक कोमल बनाने का प्रयास किया, "मुझे कुछ नहीं चाहिए भाई।" चीनी भी विचित्र निकला, "हमको भाय बोला है, तुम ज़रूर लेगा, ज़रूर लेगा- हाँ?" 'होम करते हाथ जला' वाली कहावत हो गई - विवश कहना पड़ा, "देखूँ, तुम्हारे पास है क्या।" चीनी बरामदे में कपड़े का गट्ठा उतारता हुआ कह चला, "भोत अच्छा सिल्क आता है सिस्तर! चाइना सिल्क क्रेप. . ." बहुत कहने सुनने के उपरांत दो मेज़पोश ख़रीदना आवश्यक हो गया। सोचा- चलो छुट्टी हुई, इतनी कम बिक्री होने के कारण चीनी

अब कभी इस ओर आने की भूल न करेगा।

पर कोई पंद्रह दिन बाद वह बरामदे में अपनी गठरी पर बैठ कर गज को फ़र्श पर बजा-बजा कर गुनगुनाता हुआ मिला। मैंने उसे कुछ बोलने का अवसर न दे कर, व्यस्त भाव से कहा, ''अब तो मैं कुछ न लूँगी। समझे?'' चीनी खड़ा होकर जेब से कुछ निकालता हुआ प्रफुल्ल मुद्रा से बोला, ''सिस्तर आपका वास्ते ही लाता है, भोत बेस्त सब सेल हो गया। हम इसको पाकेट में छिपा के लाता है।''

देखा- कुछ रूमाल थे ऊदी रंग के डोरे भरे हुए, किनारों का हर घुमाव और कोनों में उसी रंग से बने नन्हें फूलों की प्रत्येक पंखुड़ी चीनी नारी की कोमल उँगलियों की कलात्मकता ही नहीं व्यक्त कर रही थी, जीवन के अभाव की करुण कहानी भी कह रही थी। मेरे मुख के निषेधात्मक भाव को लक्ष्य कर अपनी नीली रेखाकृत आँखों को जल्दी-जल्दी बंद करते और खोलते हुए वह एक साँस में "सिस्तर का वास्ते लाता है, सिस्तर का वास्ते लाता है!" दोहराने तिहराने लगा।

मन में सोचा, अच्छा भाई मिला है! बचपन में मुझे लोग चीनी कह कर चिढ़ाया करते थे। संदेह होने लगा, उस चिढ़ाने में कोई तत्व भी रहा होगा। अन्यथा आज एक सचमुच का चीनी, सारे इलाहाबाद को छोड़ कर मुझसे बहन का संबंध क्यों जोड़ने आता! पर उस दिन से चीनी को मेरे यहाँ जब तब आने का विशेष अधिकार प्राप्त हो गया है। चीन का साधारण श्रेणी का व्यक्ति भी कला के संबंध में विशेष अभिरुचि रखता है इसका पता भी उसी चीनी की परिष्कृत रुचि में मिला।

नीली दीवार पर किस रंग के चित्र सुंदर जान पड़ते हैं, हरे कुशन पर किस प्रकार के पक्षी अच्छे लगते हैं, सफ़ेद पर्दे के कोने में किस बनावट के फूल पत्ते खिलेंगे आदि के विषय में चीनी उतनी ही जानकारी रखता था, जितनी किसी अच्छे कलाकार से

मिलेगी। रंग से उसका अति परिचय यह विश्वास उत्पन्न कर देता था कि वह आँखों पर पट्टी बाँध देने पर भी केवल स्पर्श से रंग पहचान लेगा।

चीन के वस्त्र, चीन के चित्र आदि की रंगमयता देखकर भ्रम होने लगता है कि वहाँ की मिट्टी का हर कण भी इन्हीं रंगों से रंगा हुआ न हो। चीन देखने की इच्छा प्रकट करते ही 'सिस्तर का वास्ते हम चलेगा' कहते-कहते चीनी की आँखों की नीली रेखा प्रसन्नता से उजली हो उठती थी।

अपनी कथा सुनाने के लिए वह विशेष उत्सुक रहा करता था। पर कहने सुनने वाले की बीच की खाई बहुत गहरी थी। उसे चीनी और बर्मी भाषाएँ आती थीं, जिनके संबंध में अपनी सारी विद्या बुद्धि के साथ मैं 'आँख के अंधे नाम नयनसुख' की कहावत चरितार्थ करती थी। अंग्रज़ी की क्रियाहीन संज्ञाओं और हिंदुस्तानी की संज्ञाहीन क्रियाओं के सम्मिश्रण से जो विचित्र भाषा बनती थी, उसमें कथा का सारा मर्म बँध नहीं पाता था। पर जो कथाएँ हृदय का बाँध तोड़ कर दूसरों को अपना परिचय देने के लिए बह निकलती हैं, प्राय: करुण होती हैं और करुणा की भाषा शब्दहीन रह कर भी बोलने में समर्थ है। चीनी फेरीवाले की कथा भी इसका अपवाद नहीं।

जब उसके माता पिता ने मांडले (बर्मा) आकर चाय की छोटी दूकान खोली तब उसका जन्म नहीं हुआ था। उसे जन्म देकर और सात वर्ष की बहन के संरक्षण में छोड़ कर जो परलोक सिधारी उस अनदेखी माँ के प्रति चीनी की श्रद्धा अटूट थी।

संभवत: माँ ही ऐसी प्राणी है जिसे कभी न देख पाने पर भी मनुष्य ऐसे स्मरण करता है जैसे उसके संबंध में जानना बाकी नहीं। यह स्वाभाविक भी है।

मनुष्य को संसार में बाँधने वाला विधाता माता ही है इसी

से उसे न मान कर संसार को न मानना सहज है। पर संसार को मानकर उसे मानना असंभव ही रहता है।

पिता ने जब दूसरी बर्मी चीनी स्त्री को गृहणी पद पर अभिषिक्त किया तब उन मातृहीनों की यातना की कठोर कहानी आरंभ हुई। दुर्भाग्य इतने से ही संतुष्ट नहीं हो सका क्यों कि उसके पाँचवें वर्ष में पैर रखते-रखते एक दुर्घटना में पिता ने भी प्राण खोए।

अन्य अबोध बालकों के समान उसने सहज ही अपनी परिस्थितियों से समझौता कर लिया पर बहन और विमाता में किसी प्रस्ताव को लेकर जो वैमनस्य बढ़ रहा था वह इस समझौते को उत्तरातर विषाक्त बनाने लगा। किशोरी बालिका की अवज्ञा का बदला उसको नहीं उसके अबोध भाई को कष्ट देकर भी चुकाया जाता था। अनेक बार उसने ठिठुरती हुई बहन की कंपित उँगलियों में अपना हाथ रख उसके मलिन वस्त्रों में अपने आँसुओं से धुला मुख किया और उसी की छोटी-सी गोद में सिमट कर भूख भुलाई थी। कितनी ही बार सवेरे आँख मूँद कर बंद द्वार के बाहर दिवार से टिकी हुई बहन को ओस से गीले बालों में अपनी ठिठुरती हुई उँगलियों को गर्म करने का व्यर्थ प्रयास करते हुए उसने पिता के पास जाने का रास्ता पूछा था। उत्तर में बहन के फीके गाल पर चुपचाप ढुलक आने वाले आँसू की बड़ी बूँद देख कर वह घबरा कर बोल उठा था - "उसे कहवा नहीं चाहिए, वह तो पिता को देखना भर चाहता है।"

कई बार पड़ोसियों के यहाँ रकाबियाँ धोकर और काम के बदले भात माँग कर बहन ने भाई को खिलाया था। व्यथा की कौन-सी अंतिम मात्रा ने बहन के नन्हें हृदय का बाँध तोड़ डाला, इसे अबोध बालक क्या जाने पर एक रात उसने बिछौने पर लेट कर बहन की प्रतीक्षा करते-करते आधी आँख खोली और विमाता को कुशल बाज़ीगर की तरह मैली कुचैली बहन का काया पलट करते हुए देखा। उसके सूखे ओठों पर विमाता की मोटी उँगली ने

दौड़-दौड़ कर लाली फेरी, उसके फीके गालों पर चौड़ी हथेली ने घूम-घूम कर सफ़ेद गुलाबी रंग भरा, उसके रुखे बालों को कठोर हाथों ने घेरे-घेर कर सँवारा और तब नए रंगीन वस्त्रों में सजी हुई उस मूर्ति को एक प्रकार से ठेलती हुई विमाता रात के अंधकार में बाहर अंतरनिहित हो गई।

बालक का विस्मय भय में बदल गया और भय ने रोने में शरण पायी। कब वह रोते-रोते सो गया इसका पता नहीं, पर जब वह किसी के स्पर्श से जागा तो बहन उस गठरी बने हुए भाई के मस्तक पर मुख रख कर सिसकियाँ रोक रही थी। उस दिन उसे अच्छा भोजन मिला दूसरे दिन कपड़े तीसरे दिन खिलौने - पर बहन के दिनों-दिन विवर्ण होने वाले होंठों पर अधिक गहरे रंग की आवश्यकता पड़ने लगी, उसके उत्तरोतर फीके पड़ने वाले गालों पर देर तक पाउडर मला जाने लगा।

बहन के छीजते शरीर और घटती शक्ति का अनुभव बालक करता था, पर वह किससे कहे, क्या करे, यह उसकी समझ के बाहर की बात थी। बार-बार सोचता था पिता का पता मिल जाता तो सब ठीक हो जाता। उसके स्मृति पट पर माँ की कोई रेखा नहीं परंतु पिता का जो अस्पष्ट चित्र अंकित था उनके स्नेहशील होने में संदेह नहीं रह जाता। प्रतिदिन निश्चित करता कि दुकान में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से पिता का पता पूछेगा और एक दिन चुपचाप उनके पास पहुँचेगा और उसी तरह चुपचाप उन्हें घर लाकर खड़ा कर देगा- तब यह विमाता कितनी डर जाएगी और बहन कितनी प्रसन्न होगी।

चाय की दुकान का मालिक अब दूसरा था, परंतु पुराने मालिक के पुत्र के साथ उसके व्यवहार में सहृदयता कम नहीं रही, इसीसे बालक एक कोने में सिकुड़ कर खड़ा हो गया और आने वालों से हकला हकला कर पिता का पता पूछने लगा। कुछ ने उसे आश्चर्य से देखा, कुछ मुस्करा दिये, पर एक दो ने दुकानदार से

कुछ ऐसी बात कही जिससे वह बालक को हाथ पकड़ कर बाहर ही छोड़ आया। इस भूल की पुनरावृत्ति होने पर विमाता से दंड दिलाने की धमकी भी दे गया। इस प्रकार उसकी खोज का अंत हो गया।

बहन का संध्या होते ही कायापलट, फिर उसका आधी रात बीत जाने पर भारी पैरों से लौटना, विशाल शरीर वाली विमाता का जंगली बिल्ली की तरह हल्के पैरों से बिछौने से उछल कर उतर आना, बहन के शिथिल हाथों से बटुए का छिन जाना और उसका भाई के मस्तक पर मुख रख कर स्तब्ध भाव से पड़े रहना आदि क्रम ज्यों के त्यों चलते रहे।

पर एक दिन बहन लौटी ही नहीं। सवेरे विमाता को कुछ चिंतित भाव से उसे खोजते देख बालक सहसा किसी अज्ञात भय से सिहर उठा। बहिन- उसकी एकमात्र आधार बहन! पिता का पता न पा सका और अब बहन भी खो गई। जैसा था वैसा ही बहन को खोजने के लिए गली-गली में मारा-मारा फिरने लगा। रात में वह जिस रूप में परिवर्तित हो जाती उसमें दिन को उसे पहचान सकना कठिन था इससे वह जिसे अच्छे कपड़े पहने हुए जाती देखता उसके पास पहुँचने के लिए सड़क के एक ओर से दूसरी ओर दौड़ पड़ता। कभी किसी से टकरा कर गिरते-गिरते बचता, कभी किसी से गाली खाता, कभी कोई दया से प्रश्न कर बैठता- ''क्या इतना ज़रा-सा लड़का भी पागल हो गया है?''

इसी प्रकार भटकता हुआ वह गिरहकटों के गिरोह के हाथ लगा और तब उसकी शिक्षा आरंभ हुई। जैसे लोग कुत्ते को दो पैरों से बैठना, गर्दन ऊँची कर खड़ा होना, मुँह पर पंजे रख कर सलाम करना आदि क़रतब सिखाते हैं उसी तरह वे सब उसे तंबाकू के धुएँ और दुर्गंध मांस से भरे और फटे चीथड़े, टूटे बर्तन और मैले शरीर से बसे हुए कमरे में बंद कर कुछ विशेष संकेतों और हँसने रोने के अभिनय में पारंगत बनाने लगे।

कुत्ते के पिल्ले के समान ही वह घुटनों के बल खड़ा रहता और हँसने रोने की विविध मुद्राओं का अभ्यास करता। हँसी का स्त्रोत इस प्रकार सूख चुका था कि अभिनय में भी वह बार-बार भूल करता और मार खाता। पर क्रंदन उसके भीतर इतना अधिक उमड़ा रहता था कि ज़रा मुँह के बनाते ही दोनों आँखों से दो गोल-गोल बूँदें नाक के दोनों ओर निकल आतीं और पतली समानांतर रेखा बनाती और मुँह के दोनों सिरों को छूती हुई ठुड्डी के नीचे तक चली जातीं। इसे अपनी दुर्लभ शिक्षा का फल समझ कर रोओं से काले उदर पर पीला-सा रंग बाँधने वाला उसका शिक्षक प्रसन्नता से उठ कर उसे लात जमा कर पुरस्कार देता।

वह दल बर्मी, चीनी, स्यामी आदि का सम्मिश्रण था। इसी से 'चोरों की बारात में अपनी अपनी होशियारी' के सिद्धांत का पालन बड़ी सतर्कता से हुआ करता। जो उसपर कृपा रखते थे उनके विरोधियों का स्नेहपात्र होकर पिटना भी उसका परम कर्तव्य हो जाता था। किसी की कोई वस्तु खोते ही उस पर संदेह की ऐसी दृष्टि आरंभ होती कि बिना चुराए ही वह चोर के समान काँपने लगता और तब उस 'चोर के घर छिछोर' की जो मरम्मत होती कि उसका स्मरण कर के चीनी की आँखें आज भी व्यथा और अपमान से भक भक जलने लगती थीं।

सबके खाने के पात्र में बचा उच्छिष्ट एक तामचीनी के टेढ़े बर्तन में सिगार से जगह जगह जले हुए कागज़ से ढक कर रख दिया जाता था जिसे वह हरी आँखों वाली बिल्ली के साथ खाता था।

बहुत रात गए तक उसके नरक के साथी एक-एक कर आते रहते और अंगीठी के पास सिकुड़ कर लेटे हुए बालक को ठुकराते हुए निकल जाते। उनके पैरों की आहट को पढ़ने का उसे अच्छा अभ्यास हो चला था। जो हल्के पैरों को जल्दी-जल्दी रखता आता है उसे बहुत कुछ मिल गया है। जो शिथिल पैरों को घसीटता हुआ लौटता वह खाली हाथ है। जो दीवार को टटोलता हुआ

लड़खड़ाते पैरों से बढ़ता वह शराब में सब खोकर बेसुध आया है। जो दहली से ठोकर खाकर धम धम पैर रखता हुआ घुसता है उसने किसी से झगड़ा मोल ले लिया है आदि का ज्ञान उसे अनजान में ही प्राप्त हो गया था।

यदि दीक्षांत संस्कार के उपरांत विद्या के उपयोग का श्रीगणेश होते ही उसकी भेंट पिता के परिचित एक चीनी व्यापारी से नहीं हो जाती तो इस साधना से प्राप्त विद्वत्ता का अंत क्या होता यह बताना कठिन है। पर संयोग ने उसके जीवन की दिशा को इस प्रकार बदल दिया कि वह कपड़े की दूकान पर व्यापारी की विद्या सीखने लगा।

प्रशंसा के पुल बाँधते-बाँधते वर्षो पुराना कपड़ा सबसे पहले उठा लाना, गज़ से इस तरह नापना कि जो रत्ती बराबर भी आगे न बढे, चाहे अँगुल भर पीछे रह जाय। रुपए से ले के पाई तक को खूब देख भाल कर लेना और लौटाते समय पुराने, खोटे पैसे विशेष रूप से खनखा-खनका कर दे डालना आदि का ज्ञान कम रहस्यमय नहीं था। पर मालिक के साथ भोजन मिलने के कारण बिल्ली के उच्छिष्ट सहभोज की आवश्यकता नहीं रही और दुकान में सोने की व्यवस्था होने से अंगीठी के पास ठोकरों से पुरस्कृत होने की विशेषता जाती रही। चीनी छोटी अवस्था में ही समझ गया था कि धन संचय से संबंध रखने वाली सभी विद्याएँ एक-सी हैं, पर मनुष्य किसी का प्रयोग प्रतिष्ठापूर्वक कर सकता है और किसी का छिपा कर।

कुछ अधिक समझदार होने पर उसने अपनी अभागी बहन को ढूँढने का बहुत प्रयत्न किया पर उसका पता न पा सका। ऐसी बालिकाओं का जीवन खतरे से खाली नहीं रहता। कभी वे मूल्य देकर खरीदी जाती हैं और कभी बिना मूल्य के गायब कर दी जाती हैं। कभी वे निराश हो कर आत्महत्या कर लेती हैं और कभी शराबी ही नशे में उन्हें जीवन से मुक्त कर देते हैं। उस रहस्य की

सूत्रधारिणी विमाता भी संभवतः पुर्नविवाह कर किसी और को सुखी बनाने के लिये कहीं दूर चली गयी थी। इस प्रकार उस दिशा में खोज का मार्ग ही बंद हो गया।

इसी बीच में मालिक के काम से चीनी रंगून आया फिर दो वर्ष कलकत्ता में रहा और अन्य साथियों के साथ उसे इसि ओर आने का आदेश मिला। यहां शहर में एक चीनी जूते वाले के घर ठहरा है और सवेरे आठ से बारह और दो से छे बजे तक फेरी लगा कर कपड़े बेचता रहता है।

चीनी की दो इच्छाएँ हैं, ईमानदार बनने की और बहन को ढूँढ लेने की- जिनमें से एक की पूर्ति तो स्वयं उसी के हाथ में है और दूसरी के लिए वह प्रतिदिन भगवान बुद्ध से प्रार्थना करता है।

बीच-बीच में वह महीनों के लिए बाहर चला जाता था, पर लौटते ही "सिस्तर का वास्ते ई लाता है" कहता हुआ कुछ लेकर उपस्थित हो जाता। इस प्रकार देखते-देखते मैं इतनी अभ्यस्त हो चुकी थी कि जब एक दिन वह 'सिस्तर का वास्ते' कह कर और शब्दों की खोज करने लगा तब मैं उसकी कठिनाई न समझ कर हँस पड़ी। धीर-धीरे पता चला - बुलावा आया है, यह लड़ने के लिए चाइना जाएगा। इतनी जल्दी कपड़े कहाँ बेचे और न बेचने पर मालिक को हानि पहुँचा कर बेइमान कैसे बने? यदि मैं उसे आवश्यक रुपया देकर सब कपड़े ले लूँ, तो वह मालिक का हिसाब चुका कर तुरंत देश की ओर चल दे।

किसी दिन पिता का पता पूछे जाने पर वह हकलाया था- आज भी संकोच से हकला रहा था। मैंने सोचने का अवकाश पाने के लिए प्रश्न किया, "तुम्हारे तो कोई है ही नहीं, फिर बुलावा किसने भेजा?" चीनी की आँखें विस्मय से भर कर पूरी खुल गईं- "हम कब बोला हमारा चाइना नहीं है? हम कब ऐसा बोला सिस्तर?" मुझे स्वयं अपने प्रश्न पर लज्जा आई, उसका इतना बड़ा चीन रहते वह अकेला कैसे होगा!

मेरे पास रुपया रहना ही कठिन है, अधिक रुपए की चर्चा ही क्या! पर कुछ अपने पास खोज ढूँढ़ कर और कुछ दूसरों से उधार लेकर मैंने चीनी के जाने का प्रबंध किया। मुझे अंतिम अभिवादन कर जब वह चंचल पैरों से जाने लगा, तब मैंने पुकार कर कहा, ''यह गज तो लेते जाओ!'' चीनी सहज स्मित के साथ घूमकर "सिस्तर का वास्ते" ही कह सका। शेष शब्द उसके हकलाने में खो गए। और आज कई वर्ष हो चुके हैं- चीनी को फिर देखने की संभावना नहीं। उसकी बहन से मेरा कोई परिचय नहीं, पर न जाने क्यों वे दोनों भाई बहन मेरे स्मृतिपट से हटते ही नहीं।

चीनी की गठरी में से कई थान मैं अपने ग्रामीण बालकों के कुर्ते बना-बना कर खर्च कर चुकी हूँ परंतु अब भी तीन थान मेरी अलमारी में रखे हैं और लोहे का गज दीवार के कोने में खड़ा है। एक बार जब इन थानों को देख कर एक खादी भक्त बहन ने आक्षेप किया था - जो लोग बाहर विशुद्ध खद्दरधारी होते हैं वे भी विदेशी रेशम के थान ख़रीद कर रखते है, इसी से तो देश की उन्नति नहीं होती- तब मैं बड़े कष्ट से हँसी रोक सकी।

वह जन्म का दुखियारा मातृ पितृहीन और बहन से बिछुड़ा हुआ चीनी भाई अपने समस्त स्नेह के एकमात्र आधार चीन में पहुँचने का आत्मतोष पा गया है, इसका कोई प्रमाण नहीं- पर मेरा मन यही कहता है।

~ Ω ~ Ω ~

5. सदाचार का तावीज़

~: हरिशंकर परसाई

लेखक का परिचय:~

हिंदी साहित्य के मूर्धन्य व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई का जन्म 22 अगस्त, 1924 को मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले के जमानी गाँव में हुआ था। अल्प आयु में ही पहले माता और कुछ समय बाद पिता के आकस्मिक निधन के बाद उनका जीवन संघर्षमय बीता। वहीं जीवन की इस कठिन घड़ी में चार छोटे भाई-बहनों की जिम्मेदारी भी उनके कंधों पर आ गई तथा अविवाहित रहकर पूरे परिवार को संभाला। आर्थिक संकट से गुजरने के कारण हरिशंकर परसाई को मैट्रिक की पढ़ाई के दौरान ही नौकरी भी करनी पड़ी। बता दें कि वन विभाग नौकरी के साथ साथ उन्होंने अपनी पढ़ाई को भी जारी रखा। उन्होंने 'नागपुर विश्वविद्यालय' से एम.ए हिंदी की डिग्री हासिल की।

वर्ष 1947 में हरिशंकर परसाई ने जबलपुर से स्वतंत्र लेखन का कार्य शुरू किया। वहीं इसके साथ ही साप्ताहिक पत्रिका 'वुसधा' का प्रकाशन भी आरंभ किया। बता दें कि हरिशंकर परसाई 'वसुधा' के संस्थापक व संपादक थे। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से समाज में फैली विभिन्न प्रकार की कुरीतियों को बहुत सहजता से उठाया। वहीं हरिशंकर परसाई की हिंदी साहित्य में व्यंग्य विधा को साहित्यिक प्रतिष्ठा दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

हरिशंकर परसाई ने हिंदी साहित्य में 'नई कहानी आंदोलन' के दौर में कई विधाओं में साहित्य का सृजन किया। हिंदी साहित्य में उपन्यास, कहानी और व्यंग्य-लेख संग्रह विधाओं में अपना विशेष योगदान देने के लिए हरिशंकर परसाई को 'साहित्य अकादमी पुरस्कार', 'शरद जोशी सम्मान' तथा मध्य प्रदेश शासन द्वारा 'शिक्षा सम्मान' से सम्मानित किया जा चुका हैं।

हरिशंकर परसाई की कई रचनाएँ जिनमें 'वैष्णव की फिसलन', 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र', 'विकलांग श्रद्धा का दौर' (व्यंग्य लेख संग्रह) 'हँसतें हैं रोते हैं', 'जैसे उनके दिन फिरे', 'भोलाराम का जीव' (कहानी-संग्रह), 'रानी नागफनी की कहानी', 'तट की खोज' (उपन्यास) व 'सदाचार का तावीज', 'शिकायत मुझे भी है', 'पगडंडियों का जमाना' (निबंध-संग्रह), 'गर्दिश के दिन' (आत्मकथा) आदि को विद्यालय के साथ ही बी.ए. और एम.ए. के सिलेबस में विभिन्न विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाता हैं।

~ Ω ~ Ω ~

एक राज्य में हल्ला मचा कि भ्रष्टाचार बहुत फ़ैल गया है।

राजा ने एक दिन दरबारियों से कहा, "प्रजा बहुत हल्ला मचा रही है कि सब जगह भ्रष्टाचार फैला हुआ है। हमें तो आज तक कहीं नहीं दिखा। तुम लोगों को नहीं दिखा हो तो बताओ।"

दरबारियों ने कहा- "जब हुजूर को नहीं दिखा तो हमें कैसे दिख सकता है ?"

राजा ने कहा- "नहीं, ऐसा नहीं है। कभी-कभी जो मुझे नहीं दीखता, वह तुम्हे दीखता होगा। जैसे मुझे बुरे सपने कभी नहीं दीखते, पर तुम्हें दिखते होंगे!"

दरबारियों ने कहा- "जी, दिखते हैं। पर वह सपनों की बात है।"

राजा ने कहा- "फिर भी तुम लोग सारे राज्य में ढूंढ़ कर देखो कि कहीं भ्रष्टाचार तो नहीं है। अगर कहीं मिल जाए तो हमारे देखने के लिए नमूना लेते आना। हम भी तो देखें कि कैसा होता है।"

एक दरबारी ने कहा- "हुज़ूर, वह हमें नहीं दिखेगा। सूना है, वह बहुत बारीक होता है। हमारी आँखें आपकी विराटता देखने की इतनी आदत हो गई है कि हमें बारीक चीज़ नहीं दिखती। (चापलूस) हमें भ्रष्टाचार दिखा भी तो उसमें हमें आपकी ही छवि दिखेगी, क्योंकि हमारी आँखों में तो आपकी ही सूरत बसी है। पर अपने राज्य में एक जाति रहती है जिसे "विशेषज्ञ" कहते हैं। इस

जाति के पास कुछ ऐसा अंजन (काजल) होता है कि उसे आँखों में आँजकर (लगाकर) वे बारीक से बारीक चीज़ भी देख लेते हैं। मेरा निवेदन है कि इन विशेषज्ञों को ही हुज़ूर भ्रष्टाचार ढूंढ़ने का काम सौंपे।"

राजा ने "विशेषज्ञ" जाति के पाँच आदमी बुलाए और कहा- "सुना है, हमारे राज्य में भ्रष्टाचार है। पर वह कहाँ है, यह पता नहीं चलता। तुम लोग उसका पता लगाओ। अगर मिल जाए तो पकड़कर हमारे पास ले आना। अगर बहुत हो तो नमूने के लिए थोड़ा-सा ले आना।"

विशेषज्ञों ने उसी दिन से छान-बीन शुरू क्र दी।

दो महीने बाद वे फिर से दरबार में हाजिर हुए।

राजा ने पूछा- "विशेषज्ञों,तुम्हारी जाँच पूरी हो गई ?"

"जी, सरकार ।"

"क्या, तुम्हेँ भ्रष्टाचार मिला ।"

"जी, बहुत सा मिला ।"

राजा ने हाथ बढ़ाया- "लाओ मुझे बताओ । देखूँ कैसा होता है।"

विशेषज्ञों ने कहा- "हुजूर, वह हाथ की पकड़ में नहीँ आता। वह स्थूल नहीं, सूक्ष्म है, अगोचर है। पर वह सर्वत्र व्याप्त है। उसे देखा नहीं जा सकता, अनुभव किया जा सकता है ।

राजा सोच में पड़ गए। बोले -"विशेषज्ञों, तुम कहते हो कि वह सूक्ष्म है, अगोचर है और सर्वव्यापी है। ये गुण तो ईश्वर के हैं। तो क्या भ्रष्टाचार ईश्वर है ?"

विशेषज्ञों ने कहा-"हाँ, महाराज, अब भ्रष्टाचार ईश्वर हो गया है।"

एक दरबारी ने पूछा- "पर वह है कहाँ ? कैसे अनुभव होता है ?"

विशेषज्ञों ने जवाब दिया- "वह सर्वत्र है। वह इस भवन में है। वह महाराज के सिंहासन में है।"

"सिंहासन में है !" कहकर राजा साहब उछलकर दूर खड़े हो गए।

विशेषज्ञों ने कहा- "हाँ, सरकार सिंहासन में है। पिछले माह इस सिंहासन पर रंग करने के जिस बिल का भुगतान किया गया है, वह बिल झूठा है। वह वास्तव में दुगुने दाम का है। आधा पैसा बीच वाले खा गए। आपके पुरे शासन में भ्रष्टाचार है और वह मुख्यत: घूस के रूप में है ।"

विशेषज्ञों की बात सुनकर राजा चिन्तित हुए और दरबारियों के कान खड़े हुए ।

राजा ने कहा- "यह तो बड़ी चिन्ता की बात है । हम भ्रष्टाचार बिल्कुल मिटाना चाहते हैं । विशेषज्ञो, तुम बता सकते हो कि वह कैसे मिट सकता है ?"

विशेषज्ञों ने कहा- "हाँ महाराज, हमने उसकी भी योजना तैयार की है । भ्रष्टाचार मिटाने के लिए महाराज को व्यवस्था में बहुत परिवर्तन करने होंगे । एक तो भ्रष्टाचार के मौके मिटाने होंगे। जैसे ठेका है तो ठेकेदार हैं और ठेकेदार है तो अधिकारियों को घूस है । ठेका मिट जाए तो उसकी घूस मिट जाए । इसी तरह और बहुत सी चीज है । किन कारणों से आदमी घूस लेता है, यह भी विचरणीय है।"

राजा ने कहा- "अच्छा, तुम अपनी पूरी योजना रख जाओ। हम और हमारा दरबार उस पर विचार करेंगे ।"

विशेषज्ञ चले गए।

राजा ने और दरबारियों ने भ्रष्टाचार मिटाने की योजना को पढ़ा । उस पर विचार किया ।

विचार करते दिन बीतने लगे और राजा का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा ।

एक दिन एक दरबारी ने कहा- "महाराज, चिन्ता के कारण आपका स्वास्थ्य बिगड़ता जा रहा है। उन विशेषज्ञों ने आपको झंझट में डाल दिया।"

राजा ने कहा- "हाँ, मुझे रात को नींद नहीं आती।"

दुसरा दरबारी बोला- "ऐसी रिपोर्ट को आग के हवाले कर देना चाहिए जिससे महाराज की नींद में खलल पड़े।"

राजा ने कहा- "पर करें क्या? तुम लोगों ने भी भ्रष्टाचार मिटाने की योजना का अध्ययन किया है। तुम्हारा क्या मत है? क्या उसे काम में लाना चाहिए?"

दरबारियों ने कहा- "महाराज, वह योजना क्या है, एक मुसीबत है। उसके अनुसार कितने उलट-फेर करने पड़ेंगे! कितनी परेशानी होगी! सारी व्यवस्था उलट-पलट हो जाएगी। जो चला आ रहा है, उसे बदलने से नई-नई कठिनाइयाँ पैदा हो सकती हैं। हमें तो कोई ऐसी तरकीब चाहिए जिससे बिना कुछ उलट-फेर किए भ्रष्टाचार मिट जाए।"

राजा साहब बोले- "मैं भी यही चाहता हूँ। पर यह हो कैसे? हमारे प्रपितामह को तो जादू आता था; हमें वह भी नहीं आता । तुम लोग ही कोई उपाय खोजो।"

एक दिन दरबारियों ने राजा के सामने एक साधु को पेश किया और कहा- "महाराज, एक कन्दरा में तपस्या करते हुए इस महान साधक को हम ले आये हैं। इन्होंने सदाचार का तावीज़ बनाया है। वह मन्त्रों से सिद्ध है और उसके बाँधने से आदमी एकदम सदाचारी हो जाता है।"

साधु ने अपने झोले में से एक तावीज़ निकालकर राजा को दिया। राजा ने उसे देखा। बोले- "हे साधु, इस तावीज़ के विषय में मुझे विस्तार से बताओ। इससे आदमी सदाचारी कैसे हो जाता है ?"

साधु ने समझाया- "महाराज, भ्रष्टाचार और सदाचार मनुष्य की आत्मा में होता है; बाहर से नहीं होता। विधाता जब मनुष्य क0 बनाता है तब किसी की आत्मा में ईमान की कल फिट कर देता है और किसी की आत्मा में बेईमानी की। इस कल में से ईमान या बेईमानी के स्वर निकलते हैं, जिन्हें 'आत्मा की पुकार' कहते हैं। आत्मा की पुकार के अनुसार आदमी काम करता है।

प्रश्न यह है कि जिनकी आत्मा से बेईमानी के स्वर निकलते हैं, उन्हें दबाकर ईमान के स्वर कैसे निकाले जाएँ ? मैं कई वर्षों से इसी के चिंतन में लगा हूँ। अभी मैंने यह सदाचार का तावीज़ बनाया है। जिस आदमी की भुजा पर यह बंधा होगा, वह सदाचारी हो जाएगा। मैंने कुत्ते पर भी इसका प्रयोग किया है। यह तावीज़ गले में बाँध देने से कुत्ता भी रोटी नहीं चुराता था। बात यह है कि इस तावीज़ में से भी सदाचार के स्वर निकलते हैं। जब किसी की आत्मा बेईमानी के स्वर निकालने लगती है तब इस तावीज़ की शक्ति आत्मा का गला घोंट देती है और आदमी को तावीज़ से ईमान के स्वर सुनाई पड़ते हैं। वह इन स्वरों को आत्मा की पुकार समझकर सदाचार की ओर प्रेरित होता है। यही इस तावीज़ का गुण है, महाराज!"

दरबार में हलचल मच गई। दरबारी उठ-उठकर तावीज़ को देखने लगे।

राजा ने खुश होकर कहा- "मुझे नहीं मालूम था कि मेरे राज्य में ऐसे चमत्कारी साधु भी हैं। महात्मन्, हम आपके बहुत आभारी हैं। आपने हमारा संकट हर लिया। हम सर्वव्यापी भ्रष्टाचार से बहुत परेशान थे। मगर हमें लाखों नहीं, करोड़ों तावीज़ चाहिए। हम राज्य की ओर से तावीज़ों का कारखाना खोल देते हैं। आप उसके जनरल मैनेजर बन जाएँ और अपनी देख रेख में बढ़िया तावीज़ बनवाएँ।"

एक मन्त्री ने कहा- "महाराज, राज्य क्यों झंझट में पड़े? मेरा तो निवेदन है कि साधु बाबा को ठेका दे दिया जाए। वे अपनी मण्डली से तावीज़ बनवा कर राज्य को सप्लाई कर देंगे।"

राजा को यह सुझाव पसन्द आया। साधु को तावीज़ बनाने का ठेका दे दिया गया। उसी समय उन्हें पाँच करोड़ रूपये कारखाना खोलने के लिए पेशगी मिल गए।

राज्यों के अखबारों में खबरें छपीं-सदाचार के तावीज़ की खोज ! तावीज़ बनाने का कारखाना खुला!'

लाखों तावीज़ बन गए। सरकार के हर सरकारी कर्मचारी की भुजा पर एक-एक तावीज़ बाँध दिया गया।

भ्रष्टाचार की समस्या का ऐसा सरल हल निकल आने से राजा और दरबारी सब खुश थे।

एक दिन राजा की उत्सुकता जागी । सोचा- "देखें तो क्या यह तावीज़ कैसे काम करता है !"

वह वेश बदलकर एक कार्यालय गए । उस दिन 2 तारीख थी। एक दिन पहले तनख्वाह मिली थी।

वह एक कर्मचारी के पास गए और कई काम बताकर उसे पाँच रूपये का नोट देने लगे।

कर्मचारी ने उन्हें डाँटा- "भाग जाओ यहाँ से! घूस लेना पाप है !"

राजा बहुत खुश हुए । तावीज़ ने कर्मचारी को ईमानदार बना दिया था।

कुछ दिन बाद वह फिर वेश बदलकर उसी कर्मचारी के पास गए। उस दिन इकत्तीस तारीख थी-महीने का आखरी दिन।

राजा ने फिर से पाँच का नोट दिखाया और उसने लेकर जेब में रख लिया।

राजा ने उसका हाथ पकड़ लिया । बोले- "मैं तुम्हारा राजा हूँ। क्या तुम आज सदाचार का तावीज़ बाँधकर नहीं आए ?"

"बाँधा है, सरकार, यह देखिए !"

उसने आस्तीन चढ़ाकर तावीज़ दिखा दिया।

राजा असमन्जस में पड़ गए । फिर ऐसा कैसे हो गया ?

उन्होंने तावीज़ पर कान लगाकर सुना। तावीज़ में से स्वर निकल रहे थे- "अरे, आज इकत्तीस है। आज तो ले ले!"

~ Ω ~ Ω ~

6. बीमार का इलाज – (एकांकी)

उदयशंकर भट्ट

लेखक परिचय:~

उदयशंकर भट्ट हिंदी के विद्वान सुप्रसिद्ध लेखक व कवि थे। उनका जन्म का जन्म 1898 ई. में इटावा में अपनी ननिहाल में हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा भी वेदों के अध्ययन के साथ हुई। काशी में भी उन्होंने अध्ययन किया, जहां स्व. पं. चन्द्रशेखर शास्त्री ने उन्हें संस्कृत के स्थान पर हिन्दी पढ़ने और हिन्दी लिखने की ओर प्रेरित किया।

उन्होंने लिखा है कि भगत सिंह, सुखदेव, यशपाल, भगवतीचरण सबसे उनका सीधा संपर्क रहा। आजादी के बाद भट्टजी आकाशवाणी के परामर्शदाता एवं निर्देशक रहे। नाटक और एकांकी के क्षेत्र में अग्रणी गिने जाने वाले उदयशंकर भट्ट की मृत्यु सन् 1966 को दिल्ली में हुई ।

उदयशंकर भट्ट की रचनाएं हैं - तक्षशिला, राका, मानसी, विसर्जन, अमृत और विष, इत्यादि, युगदीप, यथार्थ और कल्पना, विजयपथ, अन्तर्दर्शन : तीन चित्र, मुझमें जो शेष है(काव्य)।

मेरे ये हास्य एकांकी अनेक बार रंगमंच पर अभिनीत हो चुके हैं। मंचन के बाद मुझे बताया गया है कि दर्शकगण खूब हँसे, खिलखिलाए और फिर सम्बद्ध समस्याओं अथवा प्रसंगों के विषय में विचार करने को भी प्रेरित हुए। इन एकांकियों में मैंने विभिन्न अवस्थाओं में पात्रों की मानसिक प्रवृत्तियों को दर्शाने का प्रयास किया है। वास्तव में प्रस्तुतिकरण की यथार्थता पर ही उसकी प्रभावशीलता निर्भर है। मेरा विश्वास है कि समाज में रूढ़ियों, दुराग्रहों एवं मूढ़ताओं को दूर करने में रंगमंच की विशेष भूमिका है। यथार्थ यदि कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाए तो उससे सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक दृष्टि से परिष्कार होता है।

~@~@~

पात्र-परिचय

चन्द्रकान्त : आगरे का एक रईस, जो अंग्रेजी सभ्यता व रहन-सहन का प्रेमी है। एकदम हट्टाकट्टा, उम्र 45 वर्ष।

कान्ति : चन्द्रकान्त का बड़ा पुत्र। उम्र लगभग 21-22 वर्ष।

विनोद : कान्ति का समवयस्क मित्र।

शान्ति : कान्ति का छोटा भाई।

सरस्वती : कान्ति की माँ, अपने पति से सर्वथा भिन्न, दुबली-पतली, पुराने विचारों की।

प्रतिमा : कान्ति की बहन-एकदम मोटी, उम्र 24

(डॉ. गुप्ता, डॉ. नानकचन्द्र, वैद्य हरिश्चन्द्र, बूढ़ा नौकर सुखिया, पण्डित, पुजारी इत्यादि।)

~@~@~

आगरे में कान्ति के पिता मि. चन्द्रकान्त की कोठी का कमरा। कमरे की सजावट एक सम्पन्न परिवार के अनुरूप-सोफा सेट, कुर्सियाँ, तिपाई इत्यादि सभी वस्तुएँ मौजूद हैं-पर नौकर पर निर्भर रहने तथा रूढ़िवादी गृह-स्वामिनी के कारण स्वच्छता, सलीके का अभाव दरी पर बिछी हुई चादर काफी मैली है। जिस समय का यह दृश्य दिखाया जा रहा है, उस समय सवेरे के आठ बजे हैं। कान्ति का मित्र विनोद बिस्तर पर लेटा है। उसे अचानक रात में ज्वर हो गया, लगभग 104 डिग्री। कड़ी काठी होने के कारण वह लापरवाही से कभी उठकर बैठ जाता है और कभी उठकर टहलने लगता है। वह अपने भीतर से यह विचार निकाल देना चाहता है कि उसे ज्वर है। फिर ज्वर की तेजी उसे बेचैन कर देती है और वह लेट जाता है। कुछ देर बाद कान्ति 'नाइट ड्रेस' में कन्धे पर तौलिया डाले चपलियाँ फट फटाता, सीटी बजाता, बाएँ दरवाजे से कमरे में आता है।

कान्तिः हलो विनोद, अमाँ अभी तक चारपाई से चिपटे हो—आठ बज रहे हैं। क्या भूल गए, आज गाँव जाना है? मैं तो स्वयं देर से उठा, वरना मुझे अब तक तैयार हो जाना चाहिए था। लेकिन तुमने तो कुम्भकर्ण के चाचा को भी मात कर दिया, यार (पास जाकर) क्या बात है? खैर तो है?

विनोदः रात न जाने क्यों बुखार हो गया। (हाथ फैलाकर) देखो।

कान्तिः (देह छूकर) ओह, सारी देह अंगारे की तरह दहक रही है।

विनोदः कम्बख्त बुखार कैसे बेमौके आ धमका।

कान्ति, यार इस बुखार ने तो सारा मजा किरकिरा कर दिया। इलाहाबाद से मैं तुम्हें कितने आग्रह से छुट्टियाँ बिताने के लिए यहाँ आगरे लाया था। सोचा था, कुछ दिन यहाँ घर में आनन्द-मौज करेंगे और फिर खूब गाँव की सैर करेंगे।

विनोदः मालूम होता है, मेरे भाग्य में गाँव की सैर नहीं लिखी। ये छुट्टियाँ बेकार गईं।

कान्तिः गाँव का रास्ता बड़ा ऊबड़-खाबड़ है। इस दशा में तुम्हारा गाँव जाना असम्भव है। सोचता हूँ, मैं भी न जाऊँ पर जाए बिना काम भी तो नहीं चलेगा। कल चाचाजी शायद मुकदमे के लिए बाहर चले जाएँगे न जाने कब लौटें कहो तो मैं अकेला ही हो आऊँ—इफ यू डोण्ट माइण्ड।

विनोदः नहीं, नहीं, तुम हो आओ। उन्होंने आग्रह करके बुलाया है, हो आओ। मैं ठीक हो जाऊँगा। कोई बात नहीं।

कान्तिः तुम्हें कोई तकलीफ न होगी। डॉक्टर आ जाएगा। मैं शाम को ही लौटने का यत्न करूँगा।

विनोदः नहीं, नहीं, मामूली बुखार है, ठीक हो जाएगा, जाओ।

कान्ति के पिता चन्द्रकान्त का प्रवेश

चन्द्रकान्तः (दूर से) किसको बुखार है, बेटा कान्ति? अरे इतनी देर हो गई, तुम अभी तक गाँव नहीं गए। धूप हो जाएगी। धूप, धूल और धुआँ इनमें तीन न सही, दो ही आदमी के प्राण

निकालने को काफी हैं। उस पर घोड़े की सवारी—न कूदते बने, न सीधे बैठते बने। बुखार किसे हो गया बेटा?

कान्तिः बाबू जी, विनोद को रात बुखार हो गया। देह तवे की तरह गरम है। डॉक्टर को बुलाना है। ऐसे में इसका जाना...

चन्द्रकान्तः हैं हैं, विनोद कैसे जा सकता है ? और फीवर, जंगल में आग की तरह उद्दंड अभी डॉक्टर को बुलाकर दिखा देना होगा। मैंने निश्चय कर लिया है, डॉक्टर भटनागर अब इस घर में कदम नहीं रख सकता। उसने प्रतिमा का केस खराब कर दिया था। बुखार उससे उतरता ही न था। वह एकदम बकरे के थन की तरह निकम्मा सिद्ध हुआ। वैसे पूछो तो उस बेचारे का कसूर भी नहीं था, दवा तो उसने एक-से-एक बढ़िया दी पर इससे क्या, बुखार तो नहीं उतरा। टाइफाइड को छोड़कर चाहे उसका बाप भी क्यों न हो, उसे कुछ-न-कुछ तो उतरना ही चाहिए। डॉक्टर गुप्ता ने आते ही उतार दिया। अब गुप्ता ही मेरा फैमिली डॉक्टर है। गुप्ता को बुलाओ। सुखिया, ओ सुखिया, जा जरा डॉक्टर गुप्ता को तो बुला ला। कहना वह कान्ति के मित्र हैं न, जो प्रयाग से आए हैं, उन्हें उन्हें बुखार हो गया है जरा चलकर देख लीजिए। बाबूजी ने कहा है। बेटा मान गया मैं तो...

कान्तिः डॉ. भटनागर में मेरा 'फेथ' कभी नहीं रहा बाबूजी, लेकिन डॉक्टर नानकचन्द भी कम नहीं हैं। विनोद को उसे दिखाना ही ठीक होगा। न जाने उसके हाथ में कैसा जादू है। मेरा तो दिन-पर-दिन 'होमियोपैथी' में विश्वास बढ़ता जा रहा है।

चन्द्रकान्तः (कमरे में टहलते हुए) मेरे बच्चे, तुम पढ़-लिखकर भी नासमझ ही रहे। बिना अनुभव के समझदार और बच्चे में अन्तर ही क्या है ? अरे होमियोपैथी भी कोई इलाज है चाकलेट या मीठी गोलियाँ, न दीं होमियोपैथिक दवा दे दी याद रखो, बड़ों की बात गाँठ बाँध लो—जब इलाज करो, ऐलोपैथिक डॉक्टर का

इलाज करो। 'कड़वी भेषज बिन पिए, मिटे न तन का को पाप।' ये बाल धूप में सफेद नहीं हुए हैं, कहते क्यों नहीं विनोद बेटा?

विनाद: जी (करवट बदल लेता है) ये वैद्य हकीम क्या जानें, हरड़-बहेड़ा और शरबत-शोरबे के पण्डित।

कान्ति: मैं चाहता हूँ, आप इस मामले में....

चन्द्रकान्त: नहीं, यह नहीं हो सकता। मैं जानता हूँ विनोद का भला इसी में है।

सुखिया का प्रवेश

सुखिया: सरकार वो बाबू आए हैं।

चन्द्रकान्त: अबे कौन बाबू, नाम भी बताएगा या यों ही..

सुखिया: वही जो उस दिन रात को आए थे।

चन्द्रकान्त: लो और सुनो, गधों से पाला पड़ा गया है।

सुखिया: यह बाबू सरकार....

चन्द्रकान्त: कह दे, आता हूँ। और मैंने तुझे डॉक्टर के पास भेजा था। जल्दी जा (स्वयं भी चला जाता है)

कान्ति: तुम घबराना मत। मैं डॉक्टर नानकचन्द को बुलाकर लाऊँगा। अव्वल तो मेरा खयाल है, शाम तक बुखार उतर जाएगा। अच्छी विनोद, देर हो रही है चलूँ। अभी मुझे बाथ-रूम भी जाना है।

विनोद: हाँ, हाँ, तुम जाओ। मैंने बुखार की कभी परवाह नहीं की है, कान्ति। उतर जाएगा आपने-आप। शाम तक लौटने की कोशिश करना।

कान्ति: अवश्य, अवश्य, तुम्हारे बिना मेरा मन भी क्या लगेगा। लेकिन जाना जरूरी है। अच्छा, विश यू आल राइट। (सीटी बजाता चला जाता है।)

विनोद: नमस्कार। (करवट बदलकर लेट जाता है)

कान्ति की माँ सरस्वती का प्रवेश

सरस्वतीः (कमरे में घुसते ही) विनोद, क्या बात है? उठो, चाय वाय तैयार है कुछ खाओ पियो। (पास जाकर) क्या बात है, खैर, तो है ? कुछ तबीयत खराब है क्या? (पलंग के पास जाकर विनोद को छूकर) आय-हाय देखो तो कितना बुखार है। मुँह ईंगुर-सा लाल हो रिया है बिचारे का—घबराओ मत बेटा, मैं अभी वैद्य हरिचन्द को बुलाती हूँ। देखकर दवा दे जाएँगे। बड़े काबिल वैद्य हैं, विनोद। जरा कपड़ा ओढ़ लो न। (उढ़ाती है) जैसा कान्ति वैसा ही तू। मेरे लेखे तो दोनों एक हो। क्या सिर में कुछ दर्द है? (हाथ फेरकर) कब्जी होगी। अभी ठीक हो जाएगी। सुखिया, ओ सुखिया। न जाने कहाँ मर गया। इन नौकरों के मारे तो नाक में दम हो गिया है। अरे शान्ति, ओ शान्ति। (शान्ति आता है) देख तो बेटा, जा हरिचन्द वैदजी को बुला ला। देखकर दवा दे जाएँगे। भैया वैद हो तो ऐसा हो....

विनोदः माताजी, बाबूजी ने डॉक्टर गुप्ता को बुलाया है। शायद कान्ति ने डॉक्टर नानकचन्द के लिए कहा है।

सरस्वतीः लो और सुनो, इसके मारे भी मेरा नाक में दम है। उस मरे डॉक्टर कोन कुछ आवे है, न जावे है। न जाने क्यों डॉक्टर गुप्ता के पीछे पड़े रहे हैंगे। क्या नाम है उस मारे भटनागर का ? इन दोनों ने तो छोरी को मार ही डाला था। वह तो कहो, भला हो इन वैदजी का, बचा लिया। जा बेटा शान्ति, जा तो सही जल्दी।

शान्तिः जाऊँ हूँ माँ। (चला जाता है)

सरस्वतीः अरी प्रतिमा, ओ प्रतिमा, (दूर से ही आवाज आती है-'हाँ माँ क्या है ?) देख जरा मन्दिर में पण्डित पूजा कर रहे हैं। उनसे कहियो, जरा इधर होते जाएँ। और देख, उनसे कहियो, मार्जन का जल लेते आवें, विनोद भैया बीमार हैं। मैंने घर में ही मन्दिर बनवाया है बेटा।

विनोदः (उत्सुकता से करवट बदलकर) पण्डित जी का क्या होगा यहाँ माँ?

सरस्वती: बेटा, जरा मार्जन कर देंगे। अपने वो पण्डितजी रोज पूजा करने आवें हैं। मार्जन कर देंगे। सारी अल-बला दूर हो जाएगी। तुम पढ़े-लिखे लोग मानो या न मानो, पर मैं तो मानूँ हूँगी भैया पिछले दिनों प्रतिमा बीमार थी। समझ लो पण्डितजी के मार्जन से ही अच्छी हुई। मैंने कथा में एक बार सुना था—बुखार-उखार तो नाम के हैं, असली तो ये ग्रह, भूत ही हैं, जो बुखार बन कर आ जाएँ हैंगे। सिर दबा दूँ क्या बेटा? जैसे कान्ति वैसे तुम। तब तक न हो थोड़ासा दूध पी लो। अरी मिसरानी (दूर से आवाज 'आई बहू जी) अरी, देख, थोड़ा दूध तो गरम कर लाइयो।

विनोदः दूध तो मैं नहीं पियूँगी माताजी।

सरस्वती: (चिल्लाकर) अच्छा रहने दे। (विनोद से) क्या हर्ज है, थोड़ी देर बाद सही। जरा ओढ़ लो, मैं अभी आई। (जैसे ही जाने लगती है वैसे ही मार्जन का जल, दूर्वा लेकर पण्डितजी कमरे में आते हैं। सरस्वती पण्डित जी से देखो पण्डितजी, तुम्हारी पूजा से प्रतिमा जी उठी थी। याद है न ? ये मेरे कान्ति का मित्र है। देखो एक साथ पढ़े हैं। तुम्हें नहीं मालूम आजकल वो आया है न चाचा ने बुलाया है, आज गाँव जा रिया है। विनोद भी जा रिया था, पर इस बिचारे को बुखार हो गिया। जरा मन्त्र पढ़कर मार्जन तो कर दो।

पण्डितजी: क्यों नहीं, बहू जी, मन्त्र का बड़ा प्रभाव है। पुराने समयों में दवा-दारू कौन करे था। बस, मन्त्राभिसिक्त जल से मार्जन करा कि बीमारी गई। तुम तो बीमारी की कहो हो, यहाँ तो मरे जी उठे थे मरे, जिनके जीने का कोई सवाल ही नहीं उठे था। (आँखें मटका कर) हाँ, ऐसा था मन्त्र का प्रभाव।

सरस्वती: सच कहो हो पण्डितजी, जरा कर तो दो मार्जन। वैसे मैंने अपने उस वैदजी को भी बुलाया है। शान्ति गया है बुलाने।

पण्डितजी: तभी, तभी, मैं भी कहूँ आज शान्ति बाबू नहीं दिखाई दिए। ठीक है, पर शत्रु पर जब दो पिल पड़ें तो वह बचकर कैसे जाएगा ? अच्छा, यो कान्ति बाबू के दोस्त हैं अच्छा है भैया, खुश रहो, खूब पढ़ो-लिखो, धर्म में श्रद्धा रखो—हम तो ये कहे हैं। क्यों बहू जी ?

सरस्वती: हाँ और क्या, पर आजकल के ये पढ़े लिखे कुछ मानें तब न ? तुम्हारे उन्हीं को देख लो, कुछ दिनों से डॉक्टरों के चक्कर में पड़े हैं। मैं कहूँ हूँ, अपने बुजुर्गों की दवाइयाँ क्यों छोड़ी जाएँ ? जब ये डॉक्टर नहीं थे तब क्या कोई अच्छा नहीं होवे था ? सभी ठीक होयँ थे। अब जाने कैसा जमाना आ रिया है।

पण्डितजी: जमाना बड़ा खराब है, देवता, ब्राह्मण और गौ पर तो जैसे श्रद्धा ही न रही।

सरस्वती: अच्छा पण्डितजी, मार्जन कर दो, मैं अभी आई। (चली जाती है। पण्डित मन्त्र पढ़कर विनोद के ऊपर बार-बार जल छिड़कता है। (इसी समय डॉक्टर को लेकर चन्द्रकान्त प्रवेश करता है।)

चन्द्रकान्त: हैं हैं, अरे क्या हो रहा है? (पास जाकर) बस करो ब्राह्मण देवता, बस करो, 'जोर से) अरे तुम क्या समझते हो इसे भूत है। रहने दो। न जाने इन औरतों को कब बुद्धि आएगी।अरे, डॉक्टर गुप्ता आप इधर बैठिए न।

पण्डितजी: बस, थोड़ा ही मार्जन रह गया है, बाबूजी। (मार्जन करता है)

डॉक्टर गुप्ता: महाराज, क्यों मारना चाहते हो बीमार को। निमोनिया हे जाएगा, निमोनिया। (डॉक्टर के कहने पर भी पण्डित मार्जन किये ही जाता है।) अटर न्यूसेन्स, मिस्टर चन्द्रकान्त।

चन्द्रकान्त: (कड़क कर) बस रहने दो। सुनते नहीं डॉक्टर गुप्ता क्या कह रहे हैं ? निमोनिया हे जाएगा।

पण्डितजी: जैसी आपकी इच्छा। मेरा तो विचार है, विनोद बाबू का इतने से ही बुखार उतर गया होगा (चला जाता है)

डॉक्टर गुप्ता: मन्त्रों से बीमारी अच्छी हो जाती तो हम क्या भाड़ झोंकने को इतना पढ़ते न जाने देश का यह अज्ञान कब दूर होगा (खाट के पास खड़ा होकर विनोद को देखता है) बुखार तेज है। जीभ दिखाइए। पेट दिखाइए। (थर्मामीटर लगाकर नाड़ी की गति गिनता है, फिर थर्मामीटर देखकर) 104 डिग्री। कोई बात नहीं, ठीक हो जाएगा। दवा लिखे देता हूँ, डिस्पेन्सरी से मँगा लीजिएगा। दो-दो घण्टे बाद। पीने को केवल दूध। यू विल भी आल राइट विद इन टू आर थ्री डेज़।

चन्द्रकान्त: डॉक्टर गुप्ता, ये कान्ति के दोस्त हैं, बिचारे उसके साथ को आए थे।

डॉक्टर गुप्ता: ठीक हो जाएँगे। बेचैनी मालूम हो, बुखार न उतरे तो बरफ़ रखिएगा सिर पर।

चन्द्रकान्त: ठीक है। (विनोद से) घबराने की कोई बात नहीं। ठीक हो जाओगे, मामूली बुखार है। मैं अभी दवा लाता हूँ।

डॉक्टर गुप्ता: मैं शाम को भी आकर देख लूँगा। मिस्टर चन्द्रकान्त। (एक तरफ से दोनों चले जाते हैं। दूसरी तरफ से सरस्वती आती है)

सरस्वती: क्या हुआ? पण्डित जी चले गए? मार्जन कर गए?

विनोदः (चुपचाप खड़ा रहता है)

सरस्वती: (देह छूकर) अब तो बुखार कम है। देखा मन्त्र का प्रभाव, मार्जन करते ही फरक पड़ गया। (वहीं से झल्लाकर) प्रतिमा, ओ प्रतिमा, सुनियो री जरा।

प्रतिमा: (वहीं से चिल्लाती हुई) क्या है ?

सरस्वती: देख तो पण्डित जी गए क्या ? बुखार तो बहुत कुछ उतरा दिखाई दे रहा है। उनसे कह जरा और थोड़ी देर मर्जन कर दें। (प्रतिमा जाती है)

विनोदः नहीं रहने दीजिए। वे मार्जन कर गए हैं।

सरस्वतीः क्या हर्ज है, अपने घर के ही पण्डित हैं। आधी रात को बुलाओ तो आधी रात को आवें। मखौल है क्या, बीस रुपए महीना से भी आमदनी हो जाए हैगी।

(प्रतिमा का प्रवेश)

प्रतिमाः पण्डितजी तो गए अम्मा।

विनोदः माताजी, मार्जन रहने दीजिए। काफी हो गया। (चुप हो जाता है।)

(वैद हरिचन्द शान्ति के साथ आते हैं)

सरस्वतीः लो, वैद जी आ गए। आओ वैद जी।

हरिचन्दः क्या बात है बहू जी ? सवेरे-ही-सवेरे शान्ति जो पहुँचा तो मैं डर गया। कायदे से किसी आदमी को देखकर वैद्य को खुश होना चाहिए। परन्तु मेरी आदत तो और ही है, मैं तो चाहता हूँ अपनी जान-पहचान ले लोग सदा प्रसन्न रहें। हाँ, क्या बात है? (संकेत से पूछता है)

सरस्वतीः ये कान्ति के साथ पढ़े हैं वैद जी। छुट्टियों में उसी के संग सैर को आया, सो बिचारा बीमार पड़ गया जरा देखो तो- (जैसे ही वैद्य नाड़ी देखने को बढ़ता है वैसे ही विनोद बोल उठा।)

विनोदः डॉक्टर गुप्ता भी देख गए हैं, माता जी।

हरिचन्दः फिर मेरी क्या आवश्यकता है, मेरा काम ही क्या है? (एकदम दूर जा खड़ा होता है।) मैं ऐसे रोगियों का इलाज नहीं करता। उसी डॉक्टर का इलाज करो। और मैं तो राजा भूपेन्द्रसिंह के यहाँ जा रहा था। सोचा, बाबू जी ने बुलाया है तो जाना ही चाहिए।

सरस्वतीः वैद जी, उनकी भली चलाई। आने दो डॉक्टर गुप्ता को। इलाज तो तुम जानो, तुम्हारा ही होगा। मैं क्या कान्ति के मित्र को बीमार होने दूँगी ? नहीं, तुम्हें ही इलाज करना होगा। तुम्हारी ही दवा दी जाएगी। चलो देखो। उन मरों ने प्रतिमा को तो

मार ही दिया था। तुम्हीं ने तो बताया। वाह, यह कैसे हो हो सके हैगा ? इस घर में डॉक्टरी नहीं चलेगी।

हरिचन्दः (पास जाकर विनोद को देखते हुए) हाँ, सोच लो। मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो दवा देने के लिए भागते फिरें। मैं अच्छी तरह जानता हूँ, बाबू चन्द्रकान्त डॉक्टरों के चक्कर में पड़ गए हैं, जो अँग्रेजी दवाइयाँ देकर लोगों को मार देते हैं। (व्यंग्य से हँसकर) ये डॉक्टर भी अजीब हैं। देशी बीमारी और अंग्रेजी दवाई न देश, न काल (विनोद को देखकर) पेट खराब है। काढ़ा देना होगा। एक गोली दूँगा, काढ़े के साथ दे देना। बुखार पचेगा और ठीक हो जाएगा।

सरस्वतीः (उछल कर) मैं कह नहीं रही थी कब्जी से बुखार है। कहो, विनोद क्या कहा था ? घोड़ी नहीं चढ़े तो क्या बारात भी नहीं देखी बहुत-सी बीमारी का इलाज तो मैं खुद ही कर लूँ हूँगी।

हरिचन्दः बीमारी पहचानने में कर तो ले कोई मेरा मुकाबला। बड़े-बड़े सिविल सर्जन मुझे बुलाते हैं। अभी उस दिन राजा साहब के यहाँ सारे शहर के डॉक्टर इकट्ठे हुए, किसी की समझ में नहीं आ रहा था क्या बीमारी है। मुझे बुलाया गया, देखते ही मैंने झट से कह दिया यह बीमारी है।

सरस्वतीः(वैद्य की तरफ विश्वास से देखकर) फिर मान गए?

हरिचन्दः मानते न तो क्या करते वह सिक्का बैठा कि शहर भर में धूम मच गई। अब रोज जाता हूँ।

सरस्वतीः आराम आ गया फिर? भला क्यों न आराम आता। हमारे वैद्य जी क्या कोई कम हैं।

हरिचन्दः अभी देर लगेगी। पुराना रोग है। ठीक हो जाएगा।

सरस्वतीः अरे, तो आरम नहीं आया ? भला कौन बीमार है ?

हरिचन्दः उनकी बड़ी लड़की।

सरस्वतीः (साश्चर्य) वह गप्पो, क्या वैद जी ? बड़ी अच्छी

लड़की है बिचारी। राम करे अच्छी हो जाए।

हरिचन्द: हाँ। अच्छा, चला। काढ़ा और गोली भेज दूँगा। पहले बुखार पचेगा, फिर उतरेगा। उस दिन राजा साहब बोले-वैद्य जी, हमने आपको अपने परिवार का चिकित्सक बना लिया है।

सरस्वती: सो तो है ही। तुम्हें क्या कमी है मैं उनसे यही तो कहूँ कि हमें तो वैद जी की दवा लगे है। पर न जाने।

हरिचन्द: सस्ती दवा, थोड़ी फीस, देशकाल के अनुसार। और मैं डॉक्टरी नहीं जानता? मैंने भी तो मेटीरिया मेडिका, सर्जरी पढ़ी है।

सरस्वती: सो तो है ही वैद जी। (सरस्वती वैद के साथ एक द्वार से बाहर निकल जाती है। दूसरे से चन्द्रकान्त सुखिया के साथ दवा लेकर आते हैं।)

चन्द्रकान्त: लो बेटा विनोद, एक खुराक पी लो। अभी ठीक हो जाओगे। (विनोद को उठाकर दवा पिलाता है।)

विनोद: अभी वैद्य हरिचन्द भी देखने आए थे।

चन्द्रकान्त: (चौंककर) आए थे? वह मूर्ख वैद्य वह क्या जाने इलाज करना। इन औरतों के मारे नाक में दम है साहब। दवा तो नहीं पी न? अच्छा दो-दो घण्टे बाद दवा लेते रहना। पीने को दूध, बस और कुछ नहीं। मैं काम से जा रहा हूँ। (जाते-जाते सुखिया से) देख, तू यहाँ बैठ। बाबू की देख-भाल करना, भला।

सुखिया: जी सरकार। (चन्द्रकान्त चला जाता है)

बाबू मैं तो झाड़-फूँक में विश्वास करता हूँ। हाथ फेरते ही बुखार उतर जाएगा। यह ओझा से पानी लाया हूँ। दो घण्टे में बुखार क्या उसका नाम भी न रहेगा। मैंने तो छोटे बाबू से सवेरे ही कहा था—कहो तो ओझा को बुलाऊँ पर वे न माने। कहा, तू पागल है सुखिया। मैं चुप हो रहा। क्या करता, गरीब आदमी ठहरा। अभी दो घण्टे में बुखार का नाम भी न रहेगा बाबू।

~@~@~

7. हिन्दुस्तान को सलाम: डॉ. बर्नर

- कमलेश्वर

लेखक परिचय:~

कमलेश्वर (6 जनवरी1932-27 जनवरी 2007)

हिन्दी के बीसवीं शती के सबसे सशक्त लेखकों में से एक समझे जाते हैं। कहानी, उपन्यास, पत्रकारिता, स्तंभ लेखन, फिल्म पटकथा जैसी अनेक विधाओं में उन्होंने अपनी लेखन प्रतिभा का परिचय दिया। कमलेश्वर का लेखन केवल गंभीर साहित्य से ही जुड़ा नहीं रहा बल्कि उनके लेखन के कई तरह के रंग देखने को मिलते हैं। उनका उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' हो या फिर भारतीय राजनीति का एक चेहरा दिखाती फ़िल्म 'आंधी' हो, कमलेश्वर का काम एक मानक के तौर पर देखा जाता रहा है। उन्होंने मुंबई में जो टीवी पत्रकारिता की, वो बेहद मायने रखती है। 'कामगार विश्व' नाम के कार्यक्रम में उन्होंने ग़रीबों, मज़दूरों की पीड़ा-उनकी दुनिया को अपनी आवाज़ दी। कमलेश्वर की अनेक कहानियों का उर्दू में भी अनुवाद हुआ है।

कमलेश्वर का जन्म उत्तरप्रदेश के मैनपुरी जिले में हुआ। उन्होंने १९५४ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम.ए. किया। उन्होंने फिल्मों के लिए पटकथाएँ तो लिखी ही, उनके उपन्यासों पर फिल्में भी बनी। `आंधी', 'मौसम(फिल्म)', 'सारा आकाश', रजनीगंधा, 'छोटी सी बात', 'मिस्टर नटवरलाल', 'सौतन', 'लैला', 'राम-बलराम' की पटकथाएँ उनकी कलम से ही लिखी गईं थीं। लोकप्रिय टीवी सीरियल 'चन्द्रकांता' के अलावा 'दर्पण' और 'एक कहानी' जैसे धारावाहिकों की पटकथा लिखने वाले भी कमलेश्वर ही थे। उन्होंने कई वृतचित्रों और कार्यक्रमों का निर्देशन भी किया।

१९९५ में कमलेश्वर को 'पद्मभूषण' से नवाज़ा गया और २००३ में उन्हें 'कितने पाकिस्तान'(उपन्यास) के लिए साहित्य

अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वे 'सारिका' 'धर्मयुग', 'जागरण' और 'दैनिक भास्कर' जैसे प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं के संपादक भी रहे। उन्होंने दूरदर्शन के अतिरिक्त महानिदेशक जैसा महत्वपूर्ण दायित्व भी निभाया। कमलेश्वर ने अपने ७५ साल के जीवन में १२ उपन्यास, १७ कहानी संग्रह और क़रीब १०० फ़िल्मों की पटकथाएँ लिखीं। कमलेश्वर की अंतिम अधूरी रचना अंतिम सफर उपन्यास है, जिसे कमलेश्वर की पत्नी गायत्री कमलेश्वर के अनुरोध पर तेजपाल सिंह धामा ने पूरा किया और हिन्द पाकेट बुक्स ने उसे प्रकाशित किया और बेस्ट सेलर रहा। २७ जनवरी २००७ को उनका निधन हो गया।

(डॉक्टर बर्नर एक फ्रांसीसी सैलानी था, जो मुगल सम्राट शाहजहाँ के राज्यकाल में हिन्दुस्तान आया था और औरंगज़ेब के सिंहासनासीन होने के बाद भी एक दीर्घावधि तक हिन्दुस्तान की यात्रा करता रहा था। फ्रांस वापस जाने के बाद उसने अपने यात्रा-संस्मरण लिखे और प्रधानमन्त्री मिस्टर शेवर कोल बर्ट की सेवा में प्रस्तुत किये। डॉक्टर बर्नर ने अपनी यह पुस्तक 1670 में समाप्त की थी। डॉक्टर बर्नर हिन्दुस्तान में बारह साल रहा और औरंगज़ेब के साथ कश्मीर भी गया था।)

~@~@~

इस देश में यह कैसी ज़ालिमाना पुरानी रस्म चली आती है कि जब कोई शाही नौकर मरता है, तो उसकी जायदाद सरकार के आदेशानुसार जब्त हो जाती है। नेक नाम खाँ नामक एक अमीर ने चालीस-पचास बरस के अरसे में बड़े-बड़े पदों पर आसीन रहकर बहुत दौलत जमा कर ली थी, लेकिन उसको खूब अहसास था कि उसके मरते ही यह दौलत बादशाह के कब्जे में चली जाएगी, चुनांचे उसने मरने के पहले अपनी सारी दौलत गरीबों और विधवाओं में बाँट दी और खाली सन्दूकों में हड्डियाँ, लोहे के टुकड़े, जूते और पुराने कपड़े भरकर उन पर मोहरें

लगाकर यह वसीयत कर दी कि इन सन्दूकों में जो माल-असबाब बन्द है, वह खास आली हजरत के लिए है। नेकनाम खाँ के निधन के बाद यह सन्दूक बादशाह के सामने पेश किये गये। बादशाह ने उनको खुलवाया और फिर उसका सामान देखकर इतना लज्जित हुआ कि उसी समय दरबार से उठकर चला गया।

इसी प्रकार एक मालदार बनिया, जो सदा से शाही नौकर था, जब मरा, तो उसकी दौलत भी जब्त हो गयी। उसकी बीवी खुद दरबार में पहुँच गयी और उसने भरे दरबार में बादशाह से हाथ जोड़कर कहा -"सरकार, मेरे पति की आपसे क्या रिश्तेदारी थी, जो आप उसकी दौलत के वारिस बन रहे हैं।" शाहजहाँ यह बात सुनकर कहकहा मारकर हँस दिया और उसने उस बनिये की दौलत पर कब्जा नहीं किया।

कश्मीर में मुझसे एक बुड्ढे नेक मर्द ने, जो कश्मीर के एक प्राचीन राज की नस्ल में शादी कर चुका था, एक बिलकुल नयी और अनोखी दास्तान सुनायी। उस बुड्ढे ने कहा, "मैं मुग़लों से बचकर कश्मीर के एक सुदूर पर्वतीय प्रदेश की ओर निकल गया था और मुझे कुछ नहीं पता था कि किधर जा रहा हूँ। चलते-चलते मैं एक खुशनुमा प्रदेश में जा निकला। इस प्रदेश के लोगों को जैसे ही पता चला कि मैं कश्मीर के भूतपूर्व राजाओं के खानदान का हूँ, मुझसे बड़ी सहृदयता और श्रद्धा से पेश आये और उन्होंने मेरे सामने उपहारों के ढेर लगा दिये। शाम को लोग अपनी सबसे ज्यादा खूबसूरत लड़कियाँ लेकर इस निवेदन के साथ हाजिर हुए कि मैं उनमें से किसी को पसन्द कर लूँ, ताकि इस क्षेत्र को भी मेरी नस्ल का गर्व प्राप्त हो जाए।

यह बुड्ढा इस प्रदेश से एक अन्य प्रदेश में गया। वहाँ भी उसकी वैसी ही आवभगत हुई और यहाँ के लोगों ने अपनी बीवियाँ उसकी सेवा में पेश कीं। मैं अतिथि सत्कार का यह अन्दाज सुनकर विस्मित रह गया।

बंगाल की लम्बी यात्रा के बाद जब मैं दिल्ली आया, तो 1666 में मैंने यहाँ सूर्य-ग्रहण देखा। इस ग्रहण के अवसर पर हजारों हिन्दू जमुना में स्नान के लिए जमा हुए। बहुत बड़ा मेला लगा और हजारों रुपया दान किया गया। मैंने यह भी सुना कि थानेसर (कुरुक्षेत्र) में इस ग्रहण के दिन लगभग डेढ़ लाख आदमी स्नान के लिए जमा हुए थे। थानेसर के इस मेले के पूर्व कुछ ब्राह्मण दिल्ली के दरबार में हाजिर हुए थे और उन्होंने बादशाह की सेवा में एक लाख रुपये का नजराना देकर मेला लगाने की इजाजत ली थी। बादशाह ने इन ब्राह्मणों को खिलअत और एक हाथी दिया था। यह दृश्य देखने के बाद मैंने यह राय कायम की कि मुगल सम्राट यद्यपि मुसलमान हैं, लेकिन हिन्दुओं के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते। सिर्फ हिन्दू औरत को सती होने से बचाने की कोशिश जरूर करते हैं।

बन्दी दास नामक मेरा एक दोस्त मेरे स्वामी दानिशमन्द खाँ का मीर मुंशी था। वह तपेदिक के रोग से मर गया। पति के मरते ही उसकी पत्नी ने सती होने का ऐलान कर दिया। बन्दीदास के कुछ रिश्तेदार मेरे स्वामी के यहाँ नौकर थे। इसलिए मेरे स्वामी ने उनके द्वारा यह हुक्म दिया कि बेवा को इस दीवानगी की हरकत से बाज रखा जाए। उन रिश्तेदारों ने औरत को बहुत समझाया कि यद्यपि तुम्हारा यह इरादा अच्छा, सम्माननीय और सराहनीय है, लेकिन तुम्हारे बच्चे अभी छोटे हैं उन्हें छोड़ना निर्दयता होगा। इसलिए तुम सती न हो, लेकिन उस औरत ने न कोई तर्क माना और न अपना इरादा खत्म किया, चुनांचे मेरे स्वामी ने मुझे भेजा कि मैं औरत को समझाऊँ!

जब मैं बन्दीदास के मकान में गया, तो शव के चारों ओर बहुत-सी औरतें बैठी विलाप कर रही थीं। विधवा शव के पायँते बैठी थी। उसके बाल खुले हुए थे। चेहरा पीला हो रहा था। आँखों में आँसू न थे, किन्तु आँखें अंगारा हो रही थीं। मैंने विधवा के पास

जाकर कहा कि मैं नवाब दानिशमन्द खाँ के हुक्म से तुम्हें सूचना देने आया हूँ कि नवाब तुम्हारे दोनों बेटों के लिए पाँच-पाँच रुपये का वजीफा जारी रखेंगे। बशर्ते कि तुम सती होकर अपनी जान न गँवाओ, क्योंकि तुम्हारा जिन्दा रहना तुम्हारे बच्चों की देखभाल और पालन-पोषण के लिए बहुत जरूरी है। जब उसने मेरी बात का कोई जवाब न दिया, तो मैंने जरा दबाव डालने के लिए कहा, "तुमको खूब पता है कि हम अगर चाहें, तो तुमको जबरदस्ती चिता पर बैठने से रोक सकते हैं और उन लोगों को सजा दिला सकते हैं, जो तुम्हें उकसा रहे हैं।"

औरत चुपचाप मेरी बातें सुनती रही और आखिर बड़ी दृढ़ता के साथ मुझसे आँखें मिलाकर बोली, "अगर मुझे सती होने से रोका गया, तो मैं दीवार से सिर फोड़कर मर जाऊँगी।"

औरत का यह जवाब सुनकर मैंने चिल्लाकर कहा, "क्या तेरे सिर पर कोई भूत सवार है, खैर अगर तू सती ही होना चाहती है, तो ए बदबख्त, बेरहम, पहले अपने बच्चों के गले काटकर उनको भी चिता पर जला दे, क्योंकि तेरे बाद उनका पालन-पोषण करनेवाला कोई न होगा।" मैंने इतना कहकर यह धमकी भी दी कि मैं अभी नवाब साहब से कहकर तेरे बच्चों का वजीफा बन्द कराये देता हूँ। मेरे इस प्रकार क्रोध करने का उस औरत पर यह असर हुआ कि वह चुप हो गयी और उसने सिर झुकाकर घुटनों पर रख लिया। उसके बाद मैं वहाँ से चला आया। शाम को मुझे सूचना मिली कि औरत सती नहीं हुई और उसने मेरी सलाह मान ली।

मैंने सती होने के भयानक दृश्य इतनी बार देखे हैं कि भविष्य में सती की किसी अन्य दुर्घटना को देखने का मुझमें साहस नहीं रहा है। ये घटनाएँ इतनी आश्चर्यजनक हैं कि देखे बिना कोई भी इनको सच्चा नहीं मान सकता।

मैं अहमदाबाद से राजस्थान होता हुआ आगरा जा रहा था। हमारा काफिला दोपहर की धूप से बचने के लिए एक कस्बे में एक पेड़ के नीचे ठहरा हुआ था कि मैंने सुना कि उस कस्बे में अभी एक स्त्री अपने पति की लाश के साथ सती होने वाली है। मैं खबर सुनते ही दौड़कर वहाँ पहुँचा और मैंने देखा कि एक बड़े तालाब में, जिसका अधिकांश सूखा पड़ा था, एक बड़ा गड्ढा लकड़ियों से भरा हुआ है। उन लकड़ियों पर एक शव रखा हुआ है और वहाँ एक स्त्री बैठी है। मैं जब वहाँ पहुँचा, तो आग लगाने की सारी तैयारियाँ हो चुकी थीं। मेरे देखते-ही-देखते चिता में आग लगा दी गयी और पाँच-छह अधेड़ उम्र की स्त्रियों ने उस जलती चिता के चारों ओर एक-दूसरे का हाथ पकड़कर नाचना शुरू कर दिया। चिता पर बहुत-सा घी और तेल डाला गया था, इसलिए वह बहुत जल्दी भड़क उठी और स्त्री के कपड़ों में, जिन पर इत्र और जाफरान आदि छिड़का हुआ था, पलक झपकते में आग लग गयी।

सबसे अधिक विस्मय की बात यह थी कि उस स्त्री के चेहरे पर कोई दुख-पीड़ा या घबराहट का चिह्न न था। मैं अभी-अभी आश्चर्य में खोया हुआ था कि सहसा एक अन्य विस्मयकारी कहानी शुरू हो गयी। मैंने देखा, जो स्त्रियाँ चिता के चारों ओर नृत्य कर रही हैं, एक-एक करके चिता में इस तरह कूद गयीं, जैसे उन्होंने पानी में गोता लगाया हो। मेरे देखते-ही-देखते उन स्त्रियों के शरीरों में भी आग लग गयी और वे भी निश्चिन्तता और आराम के साथ जलकर राख हो गयीं।

मैंने एक आदमी से पूछा कि एक पुरुष के साथ कई स्त्रियाँ क्यों सती हुईं, तो मुझे बताया गया कि ये सारी स्त्रियाँ लौंडियाँ थीं और उन्होंने सुना कि उनकी मालकिन पति के बाद जीवित नहीं रहेंगी, तो ये लौंडियाँ भी स्नेहवश से मालकिन के साथ जल मरने को तैयार हो गयीं और उसी आग में जल मरीं जिसमें उनकी प्रिय

मालकिन सती हुई थीं। प्रेम और सान्निध्य की यह दुखभरी कहानी मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखी है और मुझे पूरा विश्वास है कि यह दृश्य मैं इस देश के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं देख सकता!

सती की निम्नलिखित कहानी इतनी अजीब है कि दिल्ली का हर रहनेवाला इससे अवगत है, बल्कि हो सकता है कि अब तक यह कहानी सारे देश में भी फैल चुकी हो।

दिल्ली की एक स्त्री का अपने एक पड़ोसी नवयुवक से, जो तम्बूरा बजाता था और दर्जी का काम करता था, नाजायज सम्बन्ध था। उस स्त्री ने अपने पति को जहर देकर मार दिया और फिर अपने प्रेमी से कहा कि अब फौरन भाग चलो, क्योंकि अगर देर हो गयी, तो मुझे दुनिया की लाज की खातिर मजबूरन अपने पति के साथ सती होना पड़ेगा। लेकिन उसके प्रेमी ने उसके साथ भागने से इनकार कर दिया, प्रेमी के इनकार करने पर यह स्त्री फौरन अपने रिश्तेदारों के पास गयी और कहा कि मेरा पति सहसा मर गया है और मेरा इरादा है कि मैं उसके साथ सती हो जाऊँ। अतः चिता तैयार की गयी। चिता के पास उसका प्रेमी भी उदास खड़ा था। स्त्री अन्तिम रस्में पूरी करने के लिए चिता के चारों ओर घूमी और फिर उसने सहसा अपने प्रेमी को भी गरेबान पकड़कर अपने साथ जलती हुई चिता में घसीट लिया और दोनों देखते-ही-देखते जलकर राख हो गये।

एक बार मैं लाल किला के एक जश्न में भी शामिल हुआ था जिसमें बादशाह को तराजू में, जो खालिस सोने की बनी हुई थी, सोने से तोला गया था और बादशाह का वजन चूँकि पिछले साल की अपेक्षा एक सेर ज्यादा निकला था, इसलिए बड़ी खुशी मनायी गयी थी।

जश्न के अवसर पर महलसरा में एक मीना बाज़ार भी लगता है, जिसमें उमरा की बीवियाँ दुकानें लगाकर बैठती हैं और शाही बेगमें, शहजादियाँ, और स्वयं बादशाह खरीददारी के लिए

निकलता है, लेकिन असल मकसद खरीददारी नहीं, बल्कि हँसी-मजाक होता है और अक्सर खरीददार दुकानदारों को रुपयों के बजाय अशर्फियाँ देते हैं! मीना बाजार के अवसर पर उमरा अपनी लड़कियों को खास तौर पर भेजते हैं ताकि उनकी सूरत-शक्ल देखकर उनका रिश्ता तय हो जाए। मीना बाजार में पहले कंचनियाँ भी आती थीं जिनका पेशा नाचना-गाना होता था, लेकिन वह इस्मतफरोस नहीं होती थीं। औरंगज़ेब ने अपनी हुकूमत में उनका आना मना कर दिया। अब मैं चाहता हूँ कि आपको एक प्रसिद्ध कंचनी का भी किस्सा सुना दूँ।

जहाँगीर के जमाने में बर्नार्ड नाम के एक अँग्रेज डॉक्टर की बड़ी ख्याति थी। उसको दरबार से पच्चीस रुपये प्रतिदिन तनख्वाह मिलती थी। बादशाह जहाँगीर उस पर बड़ा मेहरबान था और उसे प्रायः खाने-पीने की महफिलों में भी शामिल कर लेता था। बर्नार्ड की आय काफी थी, लेकिन वह आय का सारा रुपया खर्च कर देता था। उसका बड़ा सम्मान था। एक दिन नृत्य की महफिल में बर्नार्ड की नजर एक कंचनी पर पड़ गयी और वह उस पर आसक्त हो गया। बर्नार्ड ने उस कंचनी से अपने साथ शादी करने को कहा, लेकिन उसकी माँ ने इनकार कर दिया। एक समय में बर्नार्ड का प्रेम इस सीमा तक बढ़ गया कि वह हर समय उसी की कल्पना में खोया रहने लगा। उन्हीं दिनों बादशाह बीमार पड़ा। बर्नार्ड ने उसका इलाज किया और शीघ्र ही बादशाह स्वस्थ हो गया। स्वस्थ होने का जश्न मनाने के लिए दरबार हुआ और इस दरबार में वह कंचनी भी आ गयी जिस पर बर्नार्ड आसक्त था। दरबार में जहाँगीर ने इलाज की सफलता का इनाम देना चाहा, तो बर्नार्ड ने इनाम लेने के बजाय अर्ज किया - जहाँपनाह, मुझे इस इनाम से माफ रखें और इसके बजाय यह प्रार्थना स्वीकार करें कि यह नौजवान कंचनी मुझे इनायत कर दी जाए। जहाँगीर अपने खास डॉक्टर की इस प्रार्थना पर कहकहा मारकर हँसा और

उसने आदेश दिया कि उस कंचनी को बर्नार्ड के कन्धे पर बिठा दिया जाए। जब वह कंचनी बर्नार्ड के कन्धे पर सवार हो गयी, तो उसने आदेश दिया - “बर्नार्ड, अब तुम अपना मुँह माँगा इनाम लेकर इसी हालत में दरबार से अपने घर की ओर चल दो।”

मैंने हिन्दुस्तान की खूब सैर की। मैंने इसको एक अजीबो-गरीब मुल्क पाया। बड़ा खूबसूरत, बड़ा हसीन, बड़ा महान और बड़ा विचित्र।

मैंने इतने भोले लोग कहीं नहीं पाये। यहाँ के सौन्दर्य ने भी मुझे बड़ा प्रभावित किया। यहाँ के चित्ताकर्षक प्राकृतिक दृश्य को देखकर मैं प्राय: विस्मय में खो गया। दरिद्रता और असहायता के बावजूद मैंने इस मुल्क को स्वर्ग पाया।

मैं हिन्दुस्तान को सलाम करता हूँ। हिन्दुस्तान के कण-कण को मेरा आखिरी सलाम। अपने दोस्तों का अल विदाई सलाम! काश, मैं दोबारा यहाँ आ सकता!

~@~@~

8. नादान दोस्त

~ प्रेमचन्द

लेखक परिचय:~

प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई 1980 को वाराणसी जिले (उत्तर प्रदेश) के लमही गाँव में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। उनकी माता का नाम आनन्दी देवी तथा पिता का नाम मुंशी अजायबराय था जो लमही में डाक मुंशी थे। उनका वास्तविक नाम धनपतराय श्रीवास्तव था। प्रेमचंद (प्रेमचन्द) की आरम्भिक शिक्षा फ़ारसी में हुई। जब वे सात साल के थे, तभी उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। जब पन्द्रह वर्ष के हुए तब उनका विवाह कर दिया गया

इसके कारण उनका प्रारम्भिक जीवन संघर्षमय रहा। उनकी बचपन से ही पढ़ने में बहुत रुचि थी। 13 वर्ष की उम्र में ही उन्होंने तिलिस्म-ए-होशरुबा पढ़ लिया। 1920 -36तक प्रेमचंद लगभग दस से अधिक कहानियाँ हरसाल लिखते रहे। मृत्यु के बाद उनकी कहानियाँ मानसरोवर के नाम से 8 खंडों में प्रकाशित हुईं। उपन्यास और कहानी के अतिरिक्त वैचारिक निबंध, संपादकीय, पत्रिका के रूप में भी उनका विपुल लेखन उपलब्ध है। उनका स्वास्थ्य निरन्तर बिगड़ता गया। लम्बी बीमारी के बाद 8 अक्टूबर 1936 को उनका निधन हो गया।

~Ω~

केशव के घर में कार्निस के ऊपर एक चिड़िया ने अण्डे दिए थे। केशव और उसकी बहन श्यामा दोनों बड़े ध्यान से चिड़ियों को वहां आते-जाते देखा करते। सवेरे दोनों आंखे मलते कार्निस के सामने पहुँच जाते और चिड़ा या चिड़िया दोनों को वहां बैठा पातें। उनको देखने में दोनों बच्चों को न मालूम क्या मजा मिलता, दूध और जलेबी की भी सुध न रहती थी। दोनों के दिल में

तरह-तरह के सवाल उठते। अण्डे कितने बड़े होंगे? किस रंग के होंगे ? कितने होंगे? क्या खाते होंगे? उनमें बच्चे किस तरह निकल आयेंगे? बच्चों के पर कैसे निकलेंगे? घोंसला कैसा है? लेकिन इन बातों का जवाब देने वाला कोई नहीं। न अम्मां को घर के काम-धंधों से फुर्सत थी न बाबूजी को पढ़ने-लिखने से। दोनों बच्चे आपस ही में सवाल-जवाब करके अपने दिल को तसल्ली दे लिया करते थे।

श्यामा कहती—क्यों भइया, बच्चे निकलकर फुर से उड़ जायेंगे?

केशव विद्वानों जैसे गर्व से कहता—नहीं री पगली, पहले पर निकलेंगे। बगैर परों के बेचारे कैसे उड़ेगे?

श्यामा—बच्चों को क्या खिलायेगी बेचारी?

केशव इस पेचीदा सवाल का जवाब कुछ न दे सकता था।

इस तरह तीन-चान दिन गुजर गए। दोनों बच्चों की जिज्ञासा दिन-दिन बढ़ती जाती थीं अण्डों को देखने के लिए वह अधी हो उठते थे। उन्होने अनुमान लगाया कि अब बच्चे जरूर निकल आये होंगे । बच्चों के चारों का सवाल अब उनके सामने आ खड़ा हुआ। चिड़ियां बेचारी इतना दाना कहां पायेंगी कि सारे बच्चों का पेट भरे। ग़रीब बच्चे भूख के मारे चूं-चूं करके मर जायेंगे।

इस मुसीबत का अन्दाजा करके दोनों घबरा उठे। दोनों ने फैसला किया कि कार्निस पर थोड़ा-सा दाना रख दिया जाये। श्यामा खुश होकर बोली—तब तो चिड़ियों को चारे के लिए कहीं उड़कर न जाना पड़ेगा न?

केशव—नहीं, तब क्यों जायेंगी?

श्यामा—क्यों भइया, बच्चों को धूप न लगती होगी?

केशव का ध्यान इस तकलीफ की तरफ न गया था। बोला—जरूर तकलीफ हो रही होगी। बेचारे प्यास के मारे पड़फ रहे होंगे। ऊपर छाया भी तो कोई नहीं ।

आखिर यही फैसला हुआ कि घोंसले के ऊपर कपड़े की छत बना देनी चाहिये। पानी की प्याली और थोड़े-से चावल रख देने का प्रस्ताव भी स्वीकृत हो गया।

दोनों बच्चे बड़े चाव से काम करने लगें श्यामा माँ की आंख बचाकर मटके से चावल निकाल लायी। केशव ने पत्थर की प्याली का तेल चुपके से जमीन पर गिरा दिया और खूब साफ़ करके उसमें पानी भरा।

अब चांदनी के लिए कपड़ा कहां से लाए ? फिर ऊपर बगैर छड़ियों के कपड़ा ठहरेगा कैसे और छड़ियां खड़ी होंगी कैसे?

केशव बड़ी देर तक इसी उधेड़-बुन में रहा। आखिरकार उसने यह मुश्किल भी हल कर दी। श्यामा से बोला—जाकर कूड़ा फेंकने वाली टोकरी उठा लाओ। अम्मांजी को मत दिखाना।

श्यामा—वह तो बीच में फटी हुई है। उसमें से धूप न जाएगी?

केशव ने झुंझलाकर कहा—तू टोकरी तो ला, मै उसका सुराख बन्द करने की कोई हिकमत निकालूंगा।

श्यामा दौड़कर टोकरी उठा लायी। केशव ने उसके सुराख में थोड़ा –सा कागज ठूँस दिया और तब टोकरी को एक टहनी से टिकाकर बोला—देख ऐसे ही घोंसले पर उसकी आड़ दूंगा। तब कैसे धूप जाएगी?

श्यामा ने दिल में सोचा, भइया कितने चालाक हैं।

2

गर्मी के दिन थे। बाबूजी दफ्तर गए हुए थे। अम्मां दोनो बच्चों को कमरे में सुलाकर खुद सो गयी थीं। लेकिन बच्चों की आंखों में आज नींद कहां ? अम्माजी को बहकाने के लिए दोनों दम रोके आंखें बन्द किए मौके का इन्तजार कर रहे थे। ज्यों ही मालूम हुआ कि अम्मां जी अच्छी तरह सो गयीं, दोनों चुपके से उठे और बहुत धीरे से दरवाजे की सिटकनी खोलकर बाहर निकल आये। अण्डों की हिफाजत करने की तैयारियां होने लगीं। केशव

कमरे में से एक स्टूल उठा लाया, लेकिन जब उससे काम न चला, तो नहाने की चौकी लाकर स्टूल के नीचे रखी और डरते-डरते स्टूल पर चढ़ा।

श्यामा दोनों हाथों से स्टूल पकड़े हुए थी। स्टुल को चारों टागें बराबर न होने के कारण जिस तरफ ज्यादा दबाव पाता था, जरा-सा हिल जाता था। उस वक्त केशव को कितनी तकलीफ उठानी पड़ती थी। यह उसी का दिल जानता था। दोनो हाथों से कार्निस पकड़ लेता और श्यामा को दबी आवाज से डांटता— अच्छी तरह पकड़, वर्ना उतरकर बहुत मारूँगा। मगर बेचारी श्यामा का दिल तो ऊपर कार्निस पर था। बार-बार उसका ध्यान उधर चला जाता और हाथ ढीले पड़ जाते।

केशव ने ज्यों ही कार्निस पर हाथ रक्खा, दोनों चिड़ियां उड़ गयी । केशव ने देखा, कार्निस पर थोड़े-से तिनके बिछे हुए है, और उस पर तीन अण्डे पड़े हैं। जैसे घोंसले उसने पेड़ों पर देखे थे, वैसा कोई घोंसला नहीं है। श्यामा ने नीचे से पूछा— कै बच्चे हैं भइया?

केशव— तीन अण्डे हैं, अभी बच्चे नहीं निकले।

श्यामा— जरा हमें दिखा दो भइया, कितने बड़े है ?

केशव— दिखा दूंगा, पहले जरा चिथड़े ले आ, नीचे बिछा दूँ। बेचारे अंडे तिनकों पर पड़े है।

श्यामा दौड़कर अपनी पुरानी धोती फाड़कर एक टुकड़ा लायी। केशव ने झुककर कपड़ा ले लिया, उसके कई तह करके उसने एक गद्दी बनायी और उसे तिनकों पर बिछाकर तीनों अण्डे उस पर धीरे से रख दिए।

श्यामा ने फिर कहा— हमको भी दिखा दो भइया।

केशव— दिखा दूँगा, पहले जरा वह टोकरी दे दो, ऊपर छाया कर दूँ।

श्यामा ने टोकरी नीचे से थमा दी और बोली— 'अब तुम उतर आओ, मैं भी तो देखूं।'

केशव ने टोकरी को एक टहनी से टिकाकर कहा— 'जा, दाना और पानी की प्याली ले आ, मैं उतर आऊँ तो दिखा दूँगा।'

श्यामा प्याली और चावल भी लाची । केशव ने टोकरी के नीचे दोनों चीजें रख दीं और आहिस्ता से उतर आया।

श्यामा ने गिड़गिड़ा कर कहा— 'अब हमको भी चढ़ा दो भइया'

केशव— तू गिर पड़ेगी ।

श्यामा— न गिरूंगी भइया, तुम नीये से पकड़े रहना।

केशव—न भइया, कहीं तू गिर-गिरा पड़ी तो अम्मां जी मेरी चटनी ही कर डालेंगी। कहेंगी कि तूने ही चढ़ाया था। क्या करेगी देखकर। अब अण्डे बड़े आराम से हैं। जब बच्चे निकलेगें, तो उनको पालेंगे।

दोनों चिड़ियाँ बार-बार कार्निस पर आती थीं और बगैर बैठे ही उड़ जाती थीं। केशव ने सोचा, हम लोगों के डर के मारे नहीं बैठतीं। स्टूल उठाकर कमरे में रख आया , चौकी जहां की थी, वहां रख दी।

श्यामा ने आंखों में आंसू भरकर कहा—तुमने मुझे नहीं दिखाया, मैं अम्मां जी से कह दूँगी।

केशव—अम्मां जी से कहेगी तो बहुत मारूँगा, कहे देता हूँ।

श्यामा—तो तुमने मुझे दिखाया क्यों नहीं ?

केशव—और गिर पड़ती तो चार सर न हो जाते।

श्यामा—हो जाते, हो जाते। देख लेना मैं कह दूँगी।

इतने में कोठरी का दरवाजा खुला और माँ ने धूप से आंखें को बचाते हुए कहा- तुम दोनों बाहर कब निकल आए ? मैंने कहा था न कि दोपहर को न निकलना ? किसने किवाड़ खोला?

किवाड़ केशव ने खोला था, लेकिन श्यामा न माँ से यह बात नहीं कही। उसे डर लगा कि भैया पिट जायेंगे। केशव दिल में

कांप रहा था कि कहीं श्यामा कह न दे। अण्डे न दिखाए थे, इससे अब उसको श्यामा पर विश्वास न था श्यामा सिर्फ मुहब्बत के मारे चुप थी या इस क़सूर में हिस्सेदार होने की वजह से, इसका फैसला नहीं किया जा सकता। शायद दोनों ही बातें थीं।

माँ ने दोनों को डाँट-डपटकर फिर कमरे में बंद कर दिया और आप धीरे-धीरे उन्हें पंखा झलने लगी। अभी सिर्फ दो बजे थें बाहर तेज लू चल रही थी। अब दोनों बच्चों को नींद आ गयी थी।

3

चार बजे यकायक श्यामा की नींद खुली। किवाड़ खुले हुए थे। वह दौड़ी हुई कार्निस के पास आयी और ऊपर की तरफ ताकने लगी । टोकरी का पता न था। संयोग से उसकी नजर नीचे गयी और वह उलटे पांव दौड़ती हुई कमरे में जाकर जोर से बोली—भइया,अण्डे तो नीचे पड़े हैं, बच्चे उड़ गए!

केशव घबराकर उठा और दौड़ा हुआ बाहर आया तो क्या देखता है कि तीनों अण्डे नीचे टूटे पड़े हैं और उनसे को चूने की-सी चीज बाहर निकल आयी है। पानी की प्याली भी एक तरफ टूटी पड़ी हैं।

उसके चेहरे का रंग उड़ गया। सहमी हुई आंखों से जमीन की तरफ देखने लगा।

श्यामा ने पूछा—बच्चे कहां उड़ गए भइया?

केशव ने करुण स्वर में कहा—अण्डे तो फूट गए। 'और बच्चे कहां गये ?'

केशव—तेरे सर में। देखती नहीं है अण्डों से उजला-उजला पानी निकल आया है। वही दो-चार दिन में बच्चे बन जाते।

माँ ने सोटी हाथ में लिए हुए पूछा—तुम दोनो वहां धूप में क्या कर रहें हो ?

श्यामा ने कहा—अम्मां जी, चिड़िया के अण्डे टूटे पड़े है।

माँ ने आकर टूटे हुए अण्डों को देखा और गुस्से से बोलीं—तुम लोगों ने अण्डों को छुआ होगा ?

अब तो श्यामा को भइया पर ज़रा भी तरस न आया। उसी ने शायद अण्डों को इस तरह रख दिया कि वह नीचे गिर पड़े। इसकी उसे सजा मिलनी चाहिएं बोली—इन्होंने अण्डों को छेड़ा था अम्मां जी।

माँ ने केशव से पूछा—क्यों रे?

केशव भीगी बिल्ली बना खड़ा रहा।

माँ—तू वहां पहुँचा कैसे ?

श्यामा—चौके पर स्टूल रखकर चढ़े अम्मांजी।

केशव—तू स्टूल थामे नहीं खड़ी थी ?

श्यामा—तुम्हीं ने तो कहा था!

माँ—तू इतना बड़ा हुआ, तुझे अभी इतना भी नहीं मालूम कि छूने से चिड़ियों के अण्डे गन्दे हो जाते हैं। चिड़िया फिर इन्हें नहीं सेती।

श्यामा ने डरते-डरते पूछा—तो क्या चिड़िया ने अण्डे गिरा दिए हैं, अम्मां जी?

माँ—और क्या करती। केशव के सिर इसका पाप पड़ेगा। हाय, हाय, जानें ले लीं दुष्ट नें!

केशव रोनी सूरत बनाकर बोला—मैंने तो सिर्फ अण्डों को गद्दी पर रख दिया था, अम्मा जी!

माँ को हंसी आ गयी। मगर केशव को कई दिनों तक अपनी गलती पर अफसोस होता रहा। अण्डों की हिफ़ाजत करने के जोश में उसने उनका सत्यानाश कर डाला। इसे याद करके वह कभी-कभी रो पड़ता था।

दोनों चिड़ियां वहाँ फिर न दिखायी दीं।

~*~

वाणिज्यिक शब्दावली (COMMERCIAL TERMS)

1. Accountant	- लेखाकार
2. Auditor	- लेखा परीक्षक
3. Applicant	- आवेदक
4. Advisory Committee	- सलाहकार समिति
5. Agreement	- अनुबंध/ समझौता
6. Abstract	- सार, सारांश, संक्षेप
7. Banking facility	- बैंक सुविधाएँ
8. Beneficiary	- हिताधिकारी
9. Bill of exchange	- विनिमय पत्र
10. Background	- पृष्ठभूमि
11. Campaign	- अभियान
12. Credit	- उधार
13. Currency	- आवास मंडल
14. Central Tax	- केंद्रिया कर
15. Cashier	- कोषपाल/ रोकडिया
16. Daily wages	- दैनिक मजदूरी
17. Declaration	- घोषणा पत्र
18. Demand Letter	- मांग पत्र
19. Economist	- अर्थशास्त्री / अर्थशास्त्रज्ञ
20. Establishment	- स्थापना
21. Fellowship	- आध्येतावृत्ति
22. Gross profit	- कुल लाभ
23. Goods & Service Tax	– वस्तु एवं सेवा कर
24. Head office	- प्रधान कार्यालय
25. Health Insurance	- स्वास्थ्य बीमा

26. **Invoice** - बीजक/ चालान
27. **Interview** - साक्षात्कार
28. **Joint Secretary** - संयुक्त सचिव
29. **Link language** - संपर्क भाषा
30. **Local body** - स्थानीय निकाय
31. **Market price** - बाजारी कीमत
32. **Manager** - प्रबंधक
33. **Manuscript** - हस्तलिपी/ हस्तलेख
34. **Mobile Phone** - चल दूरभाषा/ गतिमान
35. **Memorandum** – ज्ञापन / स्मरण पत्र
36. **Notification** - अधिसूचना
37. **Ownership** - स्वामित्व
38. **Office Order** - कार्यालय आदेश
39. **Payment** - भुगतान
40. **Proposal** – प्रस्ताव
41. **Reminder** - अनुस्मारक
42. **Report** - प्रतिवेदन
43. **Raw material** - कच्चा माल
44. **Senior manager** - वरिष्ठ प्रबंधक
45. **Transaction** - लेन-देन कार्यवाही
46. **Travelling Aallowance** - यात्रा भत्ता
47. **Undersigned** - अधोहस्ताक्षरी
48. **Vacancy** - खाली पद/ रिक्त स्थान
49. **Welfare Fund** - कल्याण निधि
50. **Withdrawal** - निकासी

~@~@~